मौत के बाद क्या?
और मौत के पहले क्या?

मौत के बाद क्या ?

और

मौत से पहले क्या ?

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
पाण्डव-भवन
आबू पर्वत (राज.)

अमृत-सूची

१.	मौत के बाद क्या ? (सम्पादकीय)	३
२.	क्या मनुष्यात्मायें पुशु-पक्षी इत्यादि योनियों में पुनर्जन्म लेती हैं ?	५
३.	क्या मौत के बाद मनुष्यात्मा स्वर्ग या नरक या परलोक में जाती है ?	१८
४.	समाचार पत्रों में छपे पुनर्जन्म सम्बन्धी वृत्तान्त	२२
५.	आत्माओं के योनि-परिवर्तन के प्रश्न पर एक नये दष्टिकोण से विचार	३८
६.	क्या देवता और असुर कोई अलग योनियां हैं ?	४७
७.	अमृत द्वारा मृत्यु पर विजय, अमर पद की प्राप्ति	५१
८.	परमात्मा द्वारा कौन-सा अमृत मिलता है ?	५५
९.	मृत्यु को कैसे जीतें ?	५६
१०.	मृत्यु के बाद हरेक आदमी के साथ जाता है -- एक बिस्तर और एक बोरी	५९
११.	मौत से पहले क्या ?	६२
१२.	फिर करोगे कब ?	६५
१३.	कहाँ से आया .... ?	७२

मौत के बाद क्या ?

किसी-न-किसी दिन तो हर-एक मनुष्य को मरना ही है — यह एक अटल सत्य है । तो प्रश्न उठता है कि मौत क्या है और मौत के बाद क्या होता है ? यह प्रश्न हरेक व्यक्ति के जानने योग्य है क्योंकि मृत्यु अथवा काल तो सभी के सिर पर मडंरा रहा है । परन्तु बहुत-से मनुष्य इस प्रश्न का उत्तर जानने का भरसक प्रयत्न नहीं करते । वे सोचते हैं कि मरना तो है ही, मरने के बाद जो होगा सो देखा जायेगा; उसके लिए अभी से विचार करने की क्या आवश्यकता है ? वे आत्मा-वात्मा की चर्चा को आज की परिस्थिति में व्यर्थ मानकर अन्न, धन और जन की बातों पर अधिक सोचते हैं ?

बहुत-से लोग ऐसे भी हैं जो इस विषय में उत्सुकता रखते हैं और इस बारे में वे प्रचलित मान्यताओं को जानते भी हैं परन्तु वे सोचते हैं कि मौत के बाद की गति के बारे में, मौत के मुंह में जाने वाले मनुष्य जो-कुछ बताते हैं, पता नहीं वह ठीक है भी या नहीं, या अगर ठीक है तो किस अंश में ठीक है । अत: जीवन और मृत्यु की पहेली को वे भी हल किये बिना अधूरा ही छोड़ देते हैं और आखिर एक दिन मौत आ जाती है और उन्हीं के बारे में उनके मित्र-सम्बन्धी कहते हैं — "हमारा यह सम्बन्धी स्वर्ग सिधार गया है ?" कहां है स्वर्ग, कैसे जाना आपने कि वह स्वर्ग सिधार गया है और, शरीर छोड़ने के बाद स्वर्ग सिधारने वाली चीज़ का क्या परिचय है, इत्यादि-इत्यादि प्रश्नों का उत्तर तो कोई भी नहीं देता ।

प्रचलित मान्यताएं

मौत के बाद की गति के बारे में प्रचलित मान्यताओं में से एक तो यह है कि मनुष्यात्मा पशु-पक्षी, कीट-पतंगा इत्यादि योनियों में जाकर दु:ख भोगती है और, यदि उसके कर्म अच्छे हों तो वह स्वर्ग में सुख

भोगती है। एक मत यह भी है कि मौत के बाद अच्छी आत्माएं तो परलोक चली जाती हैं अथवा ज्योति-तत्व में लीन हो जाती हैं और पापात्माऐं नरक में दण्ड भोगती हैं। ऐसे भी सम्प्रदाय हैं जिनका मत है कि मरने के बाद मनुष्य कबर में दाखिल हो जाता है। आखिर जब कयामत आती है तब जाते हैं। आज बहुत-से लोग ऐसा भी मानते हैं कि आत्मा नाम की कोई अलग वस्तु नहीं है; मौत के बाद मृतक देह ही बचती है, बस। प्रश्न उठता है कि क्या ये बातें सत्य हैं ? इनमें कौन सी बात कहां तक सत्य है ? अब हम इनमें से हर एक मान्यता पर विचार करेंगे।

इस विषय में न केवल विवेक के आधार पर विचार करेंगे बल्कि 'कालों के भी काल', त्रिकालदर्शी परमपिता परमात्मा द्वारा उद्घाटित रहस्यों के आधार पर भी इस विषय को समझेंगे।

इसके अतिरिक्त, समय-समय पर समाचार पत्रों में पुनर्जन्म-सम्बन्धी जो वृत्तान्त प्रकाशित होते रहे हैं, उनका अध्ययन करते हुए भी सत्यता पर पहुँचाने की चेष्टा करेंगे। समाचार पत्रों में जो वृत्तान्त छपते रहे हैं, उनसे न केवल यह मालूम होगा कि मौत के पहले मनुष्य के जो संस्कार या कर्मों का लेखा बनता है, उसका क्या परिणाम होता है ?

– सम्पादक

क्या मनुष्यात्माएं पशु-पक्षी इत्यादि योनियों में पुनर्जन्म लेती हैं ?

चिरकाल से भारत वर्ष में यह मान्यता चली आई है कि मनुष्यात्मा को अपने बुरे कर्मों के फलस्वरूप पशु-पक्ष्यादि योनियों में भ्रमण करना पड़ता है । इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए मुख्य रूप से प्राय: तीन ही युक्तियाँ पेश की जाती रही हैं । यहाँ हम उन तीनों युक्तियों में से एक-एक को लेकर उस पर विचार करेंगे तथा अन्य भी कुछ प्रमाणों द्वारा यह स्पष्ट करेंगे कि वास्तव में मनुष्यात्मा पशु-पक्ष्यादि अथवा कीट-पतंग आदि योनियों में जन्म-पुनर्जन्म नहीं लेती ।

क्या पशु-पक्ष्यादि योनियाँ मनुष्यात्मा में सुधार के लिए हैं ?

योनि-परिवर्तन के सिद्धान्त में विश्वास करने वाले लोग प्राय: एक दलील तो यह पेश किया करते हैं कि दयालु और कृपालु परमात्मा मनुष्यात्मा के सुधार के लिए उसे पशु-पक्ष्यादि योनियों में भेज देते हैं । वे कहते हैं कि – "हरेक देश की सरकार अपराध-वृत्ति वाले नागरिकों के लिए जेलें बनाती हैं । जेलों का एक उद्देश्य यह भी होता है कि अपराधी लोगों को अपराध करने की स्वतन्त्रता न मिले और कुछ काल तक वे अपराध-वृत्ति का प्रयोग न कर सकने के फलस्वरूप वे उस वृत्ति से छुटकारा पा लें और सुधर जायें ।" उदाहरण के तौर पर एक मनुष्य यदि चोरी करता है अथवा हिंसा तथा खून करता है तो कुछ वर्ष जेल में रहने के फलस्वरूप वह उतने वर्ष चोरी चकारी या कत्ल व खून नहीं कर सकता क्योंकि वहां वह बन्दी होता है, एक कोठरी में बन्द रहता है, अथवा उसे हथकड़ियाँ या बेड़ियां लगा दी जाती हैं । इसका शुभ परिणाम यह होता है कि उसकी चोरी और आघात आदि की वृत्तियाँ प्रयोग में न आने से क्षीण हो जाती हैं, अथवा मिट जाती हैं अर्थात् उस मनुष्य का सुधार

हो जाता है। इसके अतिरिक्त, दूसरे लोग भी जब यह देखते हैं कि इस मनुष्य को बुरे कर्मों के फलस्वरूप जेल मिली है तो वे भी अपराध से बचकर रहने का यत्न करते हैं। तो जैसे अपराधी को जेल मिलने से अपराधी का और दूसरों का भी सुधार होता है वैसे ही मनुष्यात्माओं को भी पशु-पक्ष्यादि योनि मिलने के फलस्वरूप उन आत्माओं का अपना सुधार हो जाता है और दूसरों को भी यह भय बना रहता है कि यदि हमने बुरे कर्म किये तो हमें भी मनुष्य-योनि छोड़कर निकृष्ट योनियों में बन्दी होना पड़ेगा। अब हम इस तर्क पर विचार करके देखेंगे कि क्या यह ठीक है ?

ऊपर दिये तर्क पर विचार

गम्भीरता-पूर्वक विचार करने पर आप मानेंगे कि वास्तव में जेल अथवा कारागार में बन्दी होने पर मनुष्य का सुधार नहीं होता, बल्कि जेल में अन्य अपराधियों के संग में तो मनुष्य अधिक ही बुराइयाँ सीख जाता है। जेल से बाहर तो मनुष्य को अच्छे तथा बुरे दोनों प्रकार के व्यक्तियों का संग मिल सकता है और वहाँ अच्छे व्यक्तियों के संगे से उसका सुधार भी हो सकता है। परन्तु, कारागार में तो प्राय: अपराधी और दण्डनीय व्यक्ति ही होते हैं और उनके सम्पर्क में आने से तो मनुष्य उन से और भी बुराइयाँ ही सीखता है : इसी कारण, किसी अपराध-प्रिय (Criminal-minded) व्यक्ति के माता-पिता, भाई-बन्धु आदि यही यत्न करते हैं कि वह व्यक्ति बुरा होने पर भी कहीं जेल में न भेज दिया जाय वरना वहाँ जाकर तो वह और भी बुरा हो जायेगा और निर्लज्ज तथा पक्का अपराधी (Confirmed criminal) भी हो जायेगा और फिर उसका सुधार करना कठिन होगा। सरकार भी इस बात को मानती है कि जेल में व्यक्ति को दण्ड तो मिलता है परन्तु उसका सुधार नहीं होता है, इसलिए आज प्रगतिशील देशों में यह प्रयत्न हो रहे हैं कि जेलों में सुधार की कोई मनोवैज्ञानिक, शिक्षात्मक अथवा सांस्कृतिक युक्तियां

अपनाई जायें। पुनश्च, सभी इस बात को भी मानते हैं कि सुधार का सर्व-श्रेष्ठ और प्रभावशाली तरीका तो मनुष्य को कर्म का ज्ञान देना ही है और अनुशासनप्रिय बनाना ही है, न कि उसे किसी स्थान पर बन्द कर देना। जेल से बाहर तो फिर भी शिक्षा, ज्ञान या सत्संग द्वारा मनुष्य को सुधारने का अवसर मिलता है परन्तु जेल में तो यह अवसर नहीं मिलता। बहुत बार समाचार पत्रों में भी हम पढ़ते हैं कि अमुक जेबकतरे ने जेल से छुट्टी मिलते ही बाज़ार में फिर किसी की जेब काट ली और वहां अपराध करते हुए पकड़ा गया। तो स्पष्ट है कि जेल में मनुष्य की अपराध-वृत्ति का शोध नहीं होता और मनुष्य वहाँ सुधरता नहीं बल्कि बिगड़ता ही है और कई मनुष्य तो 'जेल के पक्षी' ही बन जाते हैं।

ठीक इसी प्रकार, यदि मनुष्यात्मा का, किसी दूषित वृत्ति के अथवा वासना के कारण, पशु-आदि योनियों में पुनर्जन्म हो तो वह वहां बिगड़ेगी ही, सुधरेगी नहीं। उदाहरण के तौर पर मान लीजिये कि कोई व्यक्ति चोरी की मनोवृत्ति वाला है। वह प्राय: चोरी करके ही अपने पेट भरने का साधन जुटाता है। अब मान लीजिये कि योनि-परिवर्तन के सिद्धान्त के अनुसार इस पाप-कर्म अथवा संस्कार के कारण उसे अगला जन्म बिल्ली योनि में मिला क्योंकि बिल्ली भी प्राय: चोरी करके खाती है। तो स्पष्ट है कि बिल्ली की योनि में जन्म लेने के परिणाम-स्वरूप उस आत्मा का चोरी करने का संस्कार तो पक्का ही होगा, उसका सुधार तो होगा नहीं। वहाँ उसकी चोरी की वृत्ति मिटेगी नहीं बल्कि अधिक ही प्रयोग में आयेगी। फिर, बिल्ली-योनि में उस आत्मा को अच्छा संग या वह शिक्षा तो मिल ही नहीं सकती जो कि आत्मा के सुधार के लिए आवश्यक है। अच्छा संग और ज्ञान तो आत्मा को मनुष्य योनि में ही प्राप्त हो सकता है। अत: बिल्ली की योनि में तो उसका सुधार सम्भव नहीं है। उदाहरण के तौर पर बाल्मीकि को तो शिक्षा मिली तो वह सुधर गया, परन्तु यदि वह डाका डालने की वृत्ति के परिणामस्वरूप अगले

जन्म में शेर-योनि में चला जाता तो उसका सुधार कैसे होता।

योनि-परिवर्तन की मान्यता निराधार

कोई मनुष्य कह सकता है कि चोरी करने के संस्कार वाली आत्मा का अगला जन्म बिल्ली-योनि में नहीं होगा बल्कि किसी ऐसी योनि में होगा जिसमें चोरी न करनी पड़ती हो। अच्छा मान लीजिए कि चोरी करने वाली मनुष्यात्मा का अगला जन्म शेर की योनि में होगा। तब तो और भी बुरी बात है। चोरी का संस्कार पहले था, दूसरे को आघात पहुँचाने और हिंसा करने का संस्कार अब और हो जायेगा — यह तो पतन ही हुआ, सुधार कहाँ हुआ? कोई व्यक्ति कह सकता है कि शेर-योनि में भी नहीं, कबूतर की योनि में जन्म होगा। चलिए, यही मान लेते हैं। परन्तु कबूतर बड़ा भोला होता है, चोरी के संस्कार वाले चालाक और होशियार आदमी में इतना भोलापन कहाँ से आ गया कि वह कबूतर बन गया? चोर तो सिपाही को आते देख कर चम्पत हो जाता है परन्तु कबूतर तो बिल्ली को आते देख कर आंखे मूंद लेता है और मान लेता है कि बिल्ली आ ही नहीं रही। कल तक जो चोर था, आज वह ऐसा बुद्धू कैसे बन गया? फिर, कबूतर डरपोक तो होता है, चोर तो पकड़े जाने की अवस्था में लड़कर भी छुड़ाने को तैयार रहता है, यानि कबूतर बनने पर चोर में भय का संस्कार और आ जायेगा? यह सुधार तो हुआ नहीं! कोई व्यक्ति कह सकता है कि हमें क्या मालूम कि चोरी करने वाला मनुष्य किस योनि में जायेगा? तो हम पूछते हैं कि फिर आपने मान कैसे लिया कि चोर का योनि-परिवर्तन होगा?

वास्तव में मनुष्य-योनि ही में दुःख देखकर मनुष्य का सुधार होता है

अब योनि-परिवर्तन के सिद्धान्त को मानने वाले लोगों का यह जो तर्क है कि "जैसे अपराध करने वालों को जेल मिलते देखकर अन्य लोग भी बुरे कर्मों से बचने का यत्न करते हैं उसी प्रकार पाप-कर्म करने वालों

को पशु-पक्ष्यादि योनियों में देखकर मनुष्य सुधर जाते हैं और बुरे कर्मों से बचकर रहते हैं," अब हम इस पर विचार करेंगे । सबसे पहले तो ध्यान देने के योग्य बात यह है कि अपराधियों को तो मनुष्य जेल में जाते हुए प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं परन्तु वे मनुष्यात्मा को तो पशु-पक्ष्यादि योनियों में जाता हुआ नहीं देखते, इसलिए योनि-परिवर्तन के मत को जानकर भी उन्हें कोई विशेष भय नहीं होता, बल्कि मनुष्य-योनि में ही बुरे कर्मों का दुःख रूप फल देखकर उन्हें अधिक भय होता है और वे अधिक सुधरते हैं । उदाहरण के तौर पर, विचारवान व्यक्ति को जिस-किसी कर्म से रोग, दुर्घटना, दंगा या दुःख होने की आशंका हो, वह उस कर्म से बचकर रहने का यत्न करता है । वास्तव में पशु-योनियों को देखकर भी मनुष्य को जो भय होता है उसका भी मूल कारण यह है कि वह मनुष्य-योनि में बुरे कर्मों का फल दुःख के रूप से देखता है । अगर भूल अथवा विकर्म के फलस्वरूप मनुष्य-योनि में दुःख न होता तब तो शायद मनुष्य कभी पापों से डरता ही न । अतः सच मानिये, विचारवान व्यक्ति तो मनुष्य को भी लूले, लंगड़े, गूँगे, अत्यन्त निर्धन और दुःखी लोगों को देखकर बुराई से बचने की प्रेरणा ले सकता है और सुधर सकता है; बुराई से बचकर रहने के लिए उसे योनि-परिवर्तन का सिद्धान्त मानने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि विचारवान व्यक्ति तो मनुष्य-योनि में पशु-पक्ष्यादियों से भी अधिक दुःखी मनुष्यों को देखता है । वह तो मनुष्य-योनि को कर्म-योनि के अतिरिक्त भोग-योनि भी मानकर अपने कर्मों में सुधार लाता है । अतः यह जो मान्यता है कि पशु-पक्ष्यादि योनियों में जाने से आत्मा की दूषित वृत्तियाँ मिट जाती हैं और कि दूसरा मनुष्य भी पाप से बचा रहता है, यह तथ्यहीन है । यदि इसमें तथ्य होता तो आज इस बात को मानने वाले करोड़ों लोग निर्विकार जीवन व्यतीत करते और पूर्णतः पवित्र होते परन्तु हम व्यावहारिक जीवन में ऐसा नहीं देखते । हाँ, मनुष्य-जीवन में मनुष्य को किन्हीं कर्मों से जो दुःख मिलता है, उन कर्मों को करते हुए

मनुष्य को भय होना, यह हम देखते हैं। दूसरे, यह भी देखा जाता है कि मनुष्य परमात्मा को धर्मराज मानकर भी उससे थोड़ा-बहुत डरते हैं और कर्म-फल को अटल मानकर भी बुरे कर्मों से बचने की चेष्टा करते हैं।

२- क्या मनुष्यात्मा दण्ड भोगने के लिये पशु-पक्ष्यादि योनि में जाती है ?

योनि-परिवर्तन को मानने वाले लोग दूसरा तर्क प्राय: यह पेश करते हैं कि — "जैसे किसी देश की सरकार अपराध करने वाले व्यक्ति को जेल का बन्दी बना देती है, और उसे दण्ड देती है, वैसे ही सारे विश्व की सरकार जो परमपिता परमात्मा हैं, वह भी पाप-कर्मों के फलस्वरूप मनुष्यात्माओं को पशु आदि योनियों में दण्ड भोगने के लिए भेज देते हैं। इस प्रकार, वे पशु-पक्ष्यादि योनियों को मनुष्यात्मा के सुधार के साधन के अतिरिक्त दण्ड-भोग की आवश्यक व्यवस्था भी मानते हैं। परन्तु विचार करने पर आप मानेंगे कि आत्मा तो मनुष्य-योनि में भी दण्ड भोगती हैं; तब भला उसके पशु-पक्ष्यादि योनियों में जाने की क्या आवश्यकता है ? मान लीजिये कि कोई मनुष्य दूसरों का तिरस्कार करता है, लोग जब कभी उसके पास आते हैं, वह उन्हें दुतकार देता है और वैसे भी वह लोगों से ठीक व्यवहार नहीं करता। योनि परिवर्तन के सिद्धान्त को मानने वाले लोग कह सकते हैं कि ऐसा मनुष्य कुत्ते की योनि में पुनर्जन्म लेता है और कुत्ते के रूप में जब वह एक घर से दूसरे के घर पर रोटी के टुकड़े के लिए जाता है तो लोग उसका भी तिरस्कार करते तथा उस पर धुत्कार और फटकार करके उसे भगा देते हैं और वह गली में या सड़क पर पड़ा रहता है। और, अन्त में रास्ते में ही मरा पड़ा रहता है। परन्तु हम देखते हैंकि एक अत्यन्त निर्धन और कुरूप मनुष्य भी जब दयनीय अवस्था में घर-घर मुट्ठीभर आटा माँगने के लिए जाता है तब उसे भी तो लोग दो कड़वे शब्दों से सम्बोधित करके अपने दरवाजे के सामने से हटा देते हैं और वह बेचारा सौ-दो सौ घर पर जाकर हाथ फैलाने

तथा लोगों की चुभती-चुभती बातें सुनने के बाद ही कहीं अपना पेट भर पाता है ।

अत: मनुष्य होते हुए जो तिरस्कार तथा दुर्व्यवहार सहन करना पड़ता है, वह कुत्ते की दु:ख अनुभूति से कहीं अधिक कटु अनुभूति है, क्योंकि मनुष्य में कुत्ते से तो अधिक ही स्वमान स्वाभिमान और अनुभव-शक्ति है । वह मंगता भी तो पटरियों तथा पगडंडियों पर पड़ा रहता है और अन्त में सड़कों के किनारे सरदी से ठिठुर कर, गर्मी में लू से आक्रान्त होकर या क्षुधा से पीड़ित होकर या रोग और दुर्बलता का शिकार होकर मरा पड़ा रहता है । तो जबकि हम देखते हैं कि पशु-पक्ष्यादि योनियों में मनुष्यात्मा को पुनर्जन्म लेने पर जो दु:ख हो सकता है, उससे कहीं अधिक हर प्रकार का दु:ख उसे मनुष्य-योनि में मिलता है तो यह क्यों माना जाय कि पशु-पक्ष्यादि योनियाँ मनुष्यात्मा के लिए दण्ड-योनियाँ हैं ?

यदि पशु-योनि में दण्ड मिलेगा तो न्यायालयों की क्या ज़रूरत है ?

पुनश्च, सोचने की बात है कि यदि पशु-पक्ष्यादि योनियां मनुष्यात्मा के लिए दण्ड भोगने के लिए हैं तो फिर संसार में न्यायालय, और उन द्वारा दण्ड-व्यवस्था क्यों है ? हर देश की सरकार को सोचना चाहिए कि हरेक मनुष्य बुरे कर्मों के फलस्वरूप पशु-पक्ष्यादि योनियों में पुनर्जन्म लेकर दु:ख तो भोगेगा ही, तब अपराधी को इसी मनुष्य-जन्म में दण्ड देने की व्यवस्था करने की क्या आवश्यकता है ? लोगों को भी यह सोचना चाहिए कि वकीलों को इतनी फीस देकर तथा न्यायालय को भी स्टेम्प-फीस (Stamp Fee)आदि देकर उनसे न्याय मांगने की क्या आवश्यकता है ? जो व्यक्ति अन्याय करेगा वह अगले जन्म में गधा-घोड़ा या चूहा-चमगादड़ या भेड़-बन्दर तो बनेगा ही, तब हम क्यों न्याय मांगने का कष्ट-भार अपने ऊपर लें ? एक देश दूसरे देश पर आक्रमण करता है तो योनि-परिवर्तन के सिद्धान्त को मानने वाले लोगों

को चुप करके बैठ जाना चाहिए क्योंकि उनका मन्तव्य तो यह है कि कभी हिंसक आक्रमणकारी अगले जन्म में पशु बनकर दीन अवस्था में रहेंगे। तब हम क्यों इन भावी पशु-पक्ष्यादि से माथा-फोड़ करें और अपने धन-जन को गंवायें ? आक्रमण करने दो इन सभी को, यह अगले जन्म में सभी गधे-घोड़े बनेंगे और हमारी सवारी तथा समान ढोने के काम आयेंगे या तो ये भैंस-बकरी आदि बनेंगे; हम इनका दूध पीयेंगे ! परन्तु हम देखते हैं कि संसार में ऐसा कोई नहीं सोचता, न ही आजकल के हिंसा-वृत्ति वाले अथवा पाप मनोवृत्ति वाले लोग कोई पशु बन रहे हैं। यदि योनि-परिवर्तन का सिद्धान्त सत्य होता तो आज यह सारा विश्व एक चिड़ियाघर (Zoo) से अधिक कुछ न होता, यहाँ मनुष्य तो देखने को भी न मिलता क्योंकि सभी मनुष्य दूसरा जन्म लेने पर कीट-पतंग, छिपकली-छछूँदर या शेर-चीता या बाघ लक्कड़बघा बन जाते।

प्राकृतिक आपदाएं क्यों ?

ध्यान देने के योग्य एक बात यह भी है कि संसार में जो अग्नि-काण्ड, बाढ़, दुर्भिक्ष, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि-आदि के रूप में प्राकृतिक प्रकोपों द्वारा मनुष्य को दुःख होता है, यह किस व्यवस्था के अनुसार है ? यदि मनुष्यात्मा को सुधारने और दण्ड देने के लिए पशु-पक्ष्यादि योनियों की व्यवस्था है तो आपदाएं क्यों आती हैं ? स्पष्ट है कि मनुष्यात्मा को मनुष्य-योनि में ही दुःख-सुख मिलने का नियम है और योनि-परिवर्तन का सिद्धान्त निरर्थक है। मनुष्य जब-कभी बुरा-कर्म करता है, उसका विशेष फल तो वह समयान्तर में मनुष्य-योनि में पाता ही है परन्तु उसे अशान्ति का थोड़ा-बहुत अनुभव तो तुरन्त ही हो जाता है। अतः योनि-परिवर्तन की मान्यता निराधार और अनावश्यक है।

मनुष्य को पशु-पक्षियों द्वारा दण्ड-भोग

फिर, हम देखते हैं कि मनुष्य को पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि द्वारा भी दुःख होता है। उदाहरण के तौर पर कोई बावला कुत्ता या सांप मनुष्य

को काट लेता है तो मनुष्य की मृत्यु हो जाती है । चूहा मनुष्य के कपड़े कुतर और काट जाता है । बिल्ली मनुष्य की अलमारी में से दूध पी जाती है । शेर मनुष्य का शिकार करके उसे खा जाता है । मच्छर मनुष्य को काटकर उसे मलेरिया का रोगी बना देते हैं । यह तो हुई पशुओं-पतंगों आदि से दुःख मिलने की बात, मनुष्य को पशुओं आदि द्वारा सुख भी मिलता है । उदाहरण के तौर पर गधा, घोड़ा, हाथी, ऊंट इत्यादि मनुष्य की सवारी आदि के काम में आते हैं, कुत्ता चौकीदारी करता है, गाय-भैंस आदि पशु दूध देते हैं, मोर नाचकर मन बहलाता है, बिल्ली घर में चुहों का सफाया करके कपड़े-लत्ते को कुतर-कुतर से रक्षा करती है, मछली पानी साफ रखती है, बहुत-से पक्षी खेतों में से कीड़े चुन लेते हैं और खेतों को नष्ट होने से बचा लेते हैं । अतः यह जो युक्ति है कि — "पशु-पक्ष्यादि योनियां मनुष्य के लिये भोग-योनियां हैं," वास्तव में उसका भावार्थ यह है कि मनुष्य को जैसे प्रकृति द्वारा सुख-दुःख का भोग मिलता है, वैसे ही पशु-पक्षी इत्यादि द्वारा भी सुख या दुःख का भोग मिलता है । परन्तु इसका यह अर्थ मानना गलती है कि मनुष्यात्मा स्वयं पुनर्जन्म लेकर पशु-पक्ष्यादि योनियों में दुःख और दण्ड भोगने के लिए जाती है ।

'क्या अन्ते या मति सा एव गति' के अनुसार मनुष्यात्मा पशु-योनि में जन्म लेती है ?

योनि-परिवर्तन के सिद्धान्त को मानने वाले लोग तीसरा मुख्य तर्क प्रायः यह दिया करते हैं कि अन्त समय (मरते समय) मनुष्य की जैसी स्मृति, वृत्ति अथवा वासना होती है, वैसे ही उसे योनि मिलती है । अतः वे कहते हैं कि यदि किसी मनुष्य की अन्तिम वृत्ति अथवा वासना हिंसा-प्रधान है तो उसे किसी हिंसक पशु-योनि में ही जन्म लेना चाहिए । इसी प्रकार, वे कहते हैं कि — "यदि कोई मनुष्य बहुत धनी होते हुए भी बहुत कंजूस है, किसी को धन दान नहीं देता और अपने कार्य में भी उस

धन का प्रयोग नहीं करता बल्कि अपनी तिजोड़ी की रखवाली मात्र ही करता है तो वह अगले जन्म में सर्प-योनि में जन्म लेकर भूमि में दबे हुए धन के किसी मटके पर ही चढ़कर बैठा रहता है।" इस प्रकार वे कहते हैं कि – "जिस मनुष्य का जैसा स्वभाव-संस्कार अथवा जैसी वासना होती है, तदनुसार ही वह अगले जन्म में योनि और देह लेता है।" अब इस पर विचार करके हम देखेंगे कि क्या यह तर्क ठीक है।

एक प्रश्न

अब यदि एक मिनट के लिए यह मान भी लिया जाय कि संस्कार के अनुसार मनुष्यात्मा पशु-पक्ष्यादि योनियों में जन्म-पुनर्जन्म लेती है तो प्रश्न यह है कि पशु-पक्ष्यादि योनियों में जो संस्कार मनुष्यात्माओं के संस्कारों से मूलत: भिन्न हैं, वह भला मनुष्य-देह छोड़ने वाली मनुष्यात्मा में कहाँ से आ जाते हैं? उदाहरण के तौर पर मान लिया जाय कि एक मनुष्यात्मा अपने किसी निकृष्ट संस्कार अथवा स्वभाव के कारण ऊंट या शेर की योनि में जन्म लेती है, परन्तु प्रश्न उठता है कि नर देह छोड़ कर ऊंट की योनि में जाने वाली आत्मा में ऊंट की तरह कांटे खने का संस्कार अथवा स्वभाव, या शेर की तरह नर-वध करके मनुष्य को खाने की प्रवृत्ति तथा शेर अथवा ऊंट जैसी अन्य विशेषताएं कहाँ से आ जाती हैं? इसके उत्तर में योनि-परिवर्तन के सिद्धान्त को मानने वाले लोग कहते हैं कि – "आत्मा अनादि है और पहले अनगिनत बार मनुष्य से भिन्न दूसरी योनियों के संस्कार अथवा वासनाएं उसमें हैं और जब वह शरीर छोड़ती है तो उसकी अन्तिम वासना के अनुसार ही उसे अगले जन्म में देह मिलती है और उस योनि के अनुसार ही उसमें पहले से सुषुप्त संस्कार फिर जाग जाते हैं। उनके कहने का भाव यह है कि अब जो मनुष्यात्मा मनुष्य-देह को छोड़कर ऊंट या बिल्ली या शेर के तन में जायेगी, वह आत्मा पहले भी कई बार इन योनियों को भोग चुकी है, और उसके संस्कार उसमें हैं और अब वह जाग जायेंगे।" अब आप देखिये कि यही

बात तो उन्हें सिद्ध करनी थी कि मनुष्यात्मा पशु-पक्ष्यादि योनियों में जन्म लेती है, अत: इसे सिद्ध करने से पहले ही यह मानकर चलना कि मनुष्यात्मा पहले भी ऊंट, शेर आदि योनियों में जन्म ले चुकी है, बिल्कुल ग़लत ही तो है। यह तो साध्य कोटि की बात को सिद्ध मानने की भूल करना है। इस प्रकार, आप देखेंगे कि किसी भी तर्क से मनुष्यात्माओं के योनि-परिवर्तन की मान्यता सत्य सिद्ध नहीं होती। फिर, अगर योनि-परिवर्तन का सिद्धान्त मानने वाले लोगों की यह मान्यता सच्ची है कि अन्त समय जो मनुष्य पशुओं आदि की स्मृति में रहता है (जैसे कि राजा भरतृहरि को हिरन की याद आई थी) तो वह पशु-योनि में जन्म लेता है, तो भी योनि-परिवर्तन को मानने वाले मनुष्य की ही हानि होगी क्योंकि अन्त समय भी उसे यह ख्याल रहेगा कि "पता नहीं शायद मैं भी किसी पशु-योनि में ही जन्म लूंगा," और वह अपने ही इस संकल्प के परिणाम-स्वरूप उसी पशु-योनि में जायेगा। जो इस सिद्धान्त को नहीं मानता वह अन्त के समय पशु-योनि में जाने की बात न सोचेगा और न ही पशु-योनि में जन्म ही लेगा।

क्या मनुष्यात्माएं पशु-पक्षी आदि योनियों में दण्ड भोगती हैं ?

हम बता आये हैं कि जो लोग यह मानते हैं कि मनुष्यात्मा पशु-योनि भोगती हैं, वे अपनी मान्यता को सिद्ध करने के लिये प्राय: दो बातें करते हैं। एक तो वे कहते कि मनुष्य जीवन-भर जो अच्छे या बुरे कर्म करता रहता है, उन कर्मों के परिणाम-स्वरूप मनुष्य के अच्छे या बुरे संस्कार बन जाते हैं और उन संस्कारों अथवा वृत्तियों को लेकर आत्मा उनके अनुसार ही कोई योनि धारण करती हैं। उदाहरण के तौर पर वे कहते हैं कि यदि कोई मनुष्य काम वासना वाला हो, अर्थात् किसी में काम वृत्ति प्रधान हो तो वह कुत्ते की योनि में जन्म लेता है क्योंकि कुत्ते में भी काम वृत्ति प्रधान होती है। दूसरी बात वे कहते हैं कि "बुरे कर्म करने वाले

व्यक्ति को जैसे सरकार जेल देती और उसकी स्वतन्नता छीन लेती है या अन्य किसी प्रकार से उसे सुख-सामग्री से वंचित करके वह उसे दण्ड देती है, वैसे ही बुरे कर्म करने वाले मनुष्य को अपने बुरे कर्मों का दण्ड भोगने के लिये पशु आदि योनियों में जन्म लेना पड़ता है और परतन्न होना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर, कुत्ते की योनि में जन्म लेकर वह घर-घर जाता है तो लोग दरवाजा बन्द कर देते हैं और उसे भगा देते हैं।" परन्तु क्या ये दोनों तर्क ठीक हैं ?

काम वृत्ति के कारण कामी मनुष्य कुत्ते की योनि में जन्म लेता है — इसका क्या प्रमाण है ? हम यह क्यों न मानें कि आत्मा एक मनुष्य तन छोड़ने के बाद अपने संस्कार अथवा अपनी काम वृत्ति तो साथ ले जाती है परन्तु वह दूसरा जन्म भी मनुष्य-योनि में ही लेती है क्योंकि काम वृत्ति के साथ उस आत्मा में मनुष्य-वृत्ति (मनुष्य जैसा स्वभाव) भी तो साथ ही जाती है और उसकी काम-वासना भी तो नर अथवा नारी की ही देह से सम्बन्धित होती है न कि अन्य किसी योनि से ? इसके अतिरिक्त देखा जाये तो कुत्ते से तो आज करोड़ों मनुष्य अधिक कामी हैं। आज मनुष्य की दृष्टि और वृत्ति में तो मानो काम का स्थाई वास है। काम वासना के भोग के लिए तो उसने सम्बन्ध और साधन सब जोड़ रखे हैं और इस विषय को तो वह अपना एक निजी, मुख्य और कानूनी अधिकार (Conjugal right) समझता है और इसे वह एक रस्म, रिवाज ही नहीं बल्कि कर्त्तव्य (duty) और स्वभाविक आवश्यकता (Natural) माने बैठा है। अत: अन्त समय की काम-वृत्तियों की प्रधानता के परिणाम-स्वरूप तो वह फिर भी एक कामी मनुष्य के रूप में जन्म ले सकता है, कुत्ते की योनि में उसका जन्म मानने की बात तर्क-संगत तो नहीं है।

अब दूसरी यह जो बात ऊपर कही गई है कि मनुष्य-योनि कर्म-योनि और पशु-योनि भोग-योनि है और कि दण्ड-भोग के लिए मनुष्यात्मा को

पशु योनि मिलती है, यह भी विवेक-सम्मत नहीं है क्योंकि दण्ड तो मनुष्य योनि में भी आत्मा भोगती है। हम देखते हैं कि कई कुत्ते बड़े अच्छे भवनों में रहते हैं, कारों में घूमते हैं, डबल रोटी खाते हैं। जबकि एक भिखारी मनुष्य सर्दी में, वर्षा में, पटरियों और फुटपाथ पर रात गुज़ारता है, और भूख के साथ उसे लोगों का उपहास भी सहन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य में पशु से अधिक बुद्धि होने के कारण मनुष्य को दुःख का आभास अधिक होता है; पशु को डन्डा मारने से इतना दुःख नहीं होता जितना कि मनुष्य को दस-बीस व्यक्तियों की उपस्थिति में कुछ अपमान-सूचक शब्द सुनने से दुःख होता है। अतः बुरे कर्मों के फलस्वरूप दण्ड भोगने के लिए भी मनुष्य का पशु-योनि में जन्म लेना विवेक-युक्ति नहीं है बल्कि हम देखते हैं कि मनुष्य-योनि में ही मनुष्य अन्धा, बहिरा, गूँगा, लंगड़ा, कोढ़ी, निर्धन इत्यादि अवस्थाओं में कहीं अधिक दुःख भोगता है।

क्या मौत के बाद मनुष्यात्मा स्वर्ग या नरक या परलोक में जाती है ?

आज हरेक मनुष्य की मौत के बाद प्राय: कह दिया जाता है कि — 'फलां व्यक्ति स्वर्ग सिधार गया है,' परन्तु ऐसा कहने वाले लोग शोक भी करते हैं, रोते चिल्लाते भी हैं और भगवान् से प्रार्थना भी करते हैं, कि वह उस आत्मा को शान्ति दे । वे दीपक भी जलाते हैं कि उसकी आत्मा भटक न जाये और बाद में, हर वर्ष उसके लिए श्राद्ध भी करते हैं ! प्रश्न उठता है कि यदि उनके मन में सचमुच यह दृढ़ विश्वास है कि वह आत्मा स्वर्ग सिधार गई तो वे उसके लिए रोते क्यों हैं, उस आत्मा को इस मृत्युलोक के असार पदार्थ खिलाने के लिए विविध यत्न भी क्यों करते हैं ?

मौत के बाद यदि सभी मनुष्यात्माएं स्वर्ग जाती रहतीं तो आज स्वर्ग में जन संख्या की अति वृद्धि (Over-population) की समस्या खड़ी हो गई होती और आजकल के मनुष्यों के जैसे संस्कार हैं, उन संस्कारों वाली आत्माएं यदि स्वर्ग में जाती रहती तो स्वर्ग में भी इस लोक की तरह लड़ाई-झगड़े, विषय-विकार, रोना पीटना लगा होता और वह स्वर्ग भी 'स्वर्ग' न रहकर नरक हो गया होता । आज तो मनुष्य मनुष्यता से भी गिर चुका है जब कि स्वर्ग का अधिकार तो देव-स्वभाव वाले ही व्यक्ति को हो सकता है । अत: निश्चय कीजिये कि सभी मनुष्य के कर्म-बन्धन इसी लोक के लोगों से जुटे हुए हैं और इसलिए, सभी मनुष्य फिर-फिर इसी संसार में ही मनुष्य जन्म लेकर सुख-दु:ख भोगते रहते हैं ।

स्वर्ग और नरक है कहाँ ? वास्तव में 'स्वर्ग' सुख की और 'नरक' दु:ख की दुनिया को कहा जाता है । स्वर्ग इस लोक से ऊपर कहीं नहीं है, न ही नरक इस पृथ्वी के नीचे कहीं है बल्कि सतयुग और त्रेतायुग में

मनुष्यों तथा अन्यान्य जीव-प्राणियों के सतोप्रधान होने के कारण यही सृष्टि 'स्वर्ग' होती है और मनुष्य दिव्य गुणों से युक्त तथा पवित्र होने के कारण 'देवता' कहलाता है और द्वापर तथा कलियुग में मनुष्य आसुरी स्वभाव वाले, पतित, विकारी, भ्रष्टाचारी होते हैं और यही सृष्टि 'नरक' होती है। अत: आज हम किसी की मौत होने पर यह नहीं कह सकते कि फलां व्यक्ति स्वर्ग सिधार गया है अथवा अपने हैवनली एबोड (Heavinly Abode) चला गया है क्योंकि सभी मनुष्य एक शरीर छोड़ने के बाद इसी सृष्टि में ही जन्म लेते रहते हैं। सुख या दु:ख इसी लोक में है। इसके अलावा ब्रह्मा, विष्णु और शंकर की जो दुनिया है, वहां दु:ख नहीं है और वहाँ मनुष्यात्मा तो जन्म ले भी नहीं सकती। स्वर्ग अर्थात् सतयुगी दुनिया में तो मनुष्यात्मा तब जा सकती है जब दैवी स्वभाव वाली बने, सभी कर्म-बन्धनों से मुक्त हो और परमात्मा सतयुगी दुनिया की स्थापना करे।

क्या मौत के बाद मनुष्यात्मा परलोक में जाती है ?

इसी तरह परलोक में भी मनुष्यात्मायें तभी जाती हैं जब उनके संस्कार पवित्र हो जायें और वे अपने कर्मों के बन्धन को काट लें अथवा पूर्व-जन्मों के विकर्मों को दग्ध कर लें और परमपिता परमात्मा उनकी मार्ग-प्रदर्शना करें।

यह सब कलियुग के अन्त में ही होता है। कलियुग के अन्त में मनुष्यात्मायें पशुओं से भी अधिक विकारी और पतित हो जाती हैं। धर्म-कर्म सब नष्ट हो जाता है। मनुष्यों का आहार- विहार सब तमोप्रधान हो जाता है। ऐसे समय सर्व-शक्तिमान, पतित-पावन, कल्याणकारी परमपिता परमात्मा शिव इस मनुष्य-सृष्टि में अवतरित होकर मनुष्यात्माओं को ये सभी रहस्य समझाते हैं कि आत्मा क्या चीज है, वह इस सृष्टि में कितने पुनर्जन्म लेती है, परलोक कहां है, 'स्वर्ग' किसे कहते हैं, मनुष्य के कर्म कैसे होने चाहिये और विकर्मों को दग्ध करने के लिए

पुरुषार्थ क्या है । परमपिता परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा ज्ञान तथा योग सिखा कर मनुष्य को देवता बनाते हैं और, इस प्रकार फिर से सतयुगी देव-सृष्टि अर्थात् स्वर्ग (Heavenly Abode) की स्थापना कराते हैं और महादेव शंकर के द्वारा वैज्ञानिकों तथा अज्ञानी एवं अभिमानी मनुष्यों को प्रेर कर कलियुगी, दु:खी सृष्टि अर्थात् नरक (Hell) का महाविनाश भी कराते हैं । तब सभी आत्मयें महामृत्यु (महाविनाश) के परिणाम स्वरूप परलोक में ज्योति-तत्व में जाकर निर्वाणावस्था (मुक्ति अवस्था) में निवास करती हैं (लीन नहीं होतीं क्योंकि आत्मायें अविनाशी है) और परलोक में जाने से पहले वे धर्मराज की पुरी में अपने रहे हुए विकर्मों के कारण बहुत बड़ी सज़ायें भी भोगती हैं । परन्तु जिन आत्माओं ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा ईश्वरीय ज्ञान और योग द्वारा संस्कार बदले होते हैं और अपने विकर्म दग्ध कर लिये होते हैं, वे परलोक में मुक्ति प्राप्त करने के कुछ काल बाद सतयुगी देव-सृष्टि (स्वर्ग) में सुख भोगती हैं । सृष्टि के महाविनाश से पूर्व, अर्थात् परमपिता परमात्मा के अवतरण और मार्ग प्रदर्शना से पूर्व कोई भी मनुष्यात्मा कर्म-बन्धन से मुक्त नहीं हो सकती और परलोक या स्वर्ग में भी नहीं जा सकती; इसीलिए, 'मुक्तिदाता', 'सुखदाता''सद्गतिदाता', 'मार्ग-प्रदर्शक' इत्यादि शब्दों से केवल परमात्मा ही की महिमा प्रसिद्ध है, किसी मनुष्य की नहीं ।

क्या मौत के बाद मनुष्य कबर दाखिल ही हुआ रहता है ?

कुछ लोग मनुष्य की मृत्यु के बाद उसके शव को कबर में दफना देते हैं । उसका शव तो कबर दाखिल रहता ही है परन्तु आत्मा के बारे में कैसे कहा जा सकता है कि वह भी कबर में दाखिल रहती है ? आत्मा तो अपने अच्छे या बुरे कर्मों के फल-स्वरूप मनुष्य-तन में पुनर्जन्म लेकर सुख या दु:ख भोगती ही है । यदि मनुष्यात्मायें परलोक अथवा 'आलिम-ए-अरवाह' (आत्माओं की दुनिया अथवा ब्रह्मलोक) से आकर

यहां केवल एक ही जन्म लेकर फिर कयामत (महाविनाश) तक कब्र दाखिल हुई रहती तब तो किसी मनुष्य के सुखी और किसी के दु:खी होने का कोई कारण ही नहीं हो सकता । एक मनुष्यात्मा का निर्धन और दलित जाति के किसी कुटुम्ब में शरीर लेना और अन्य किसी का धनवान, धर्म-प्रेमी और सुशिक्षित कुटुम्ब में शरीर लेना ही सिद्ध करता है कि शरीर लेने वाली आत्मा के पूर्व कर्मों का भी कुछ हिसाब-किताब है, अर्थात् वह पहले कुछ कर्म कर चुकी है और जन्म ले चुकी है और उसके आधार पर ही अब उसका यह जन्म हुआ है । इसके अतिरिक्त, आज तक अनेक बालकों-बालिकाओं ने अपने पूर्व-जन्मों के जो कुछ वृतान्त बतायें हैं, उनसे भी सिद्ध है कि मौत के बाद पुनर्जन्म तो होता ही है ।

अब आने वाली मौत के बाद क्या होगा ?

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि जन्म-जन्मान्तर तो मनुष्यात्माएं इसी लोक में पुनर्जन्म लेकर पूर्ण सुख-दु:ख भोगती आई हैं । परन्तु अब पुन: इस सृष्टि के महाविनाश की सामग्री तैयार हो चुकी है । परमपिता परमात्मा शिव ने महादेव शंकर द्वारा वैज्ञानिकों को प्रेरणा देकर ऐटम और हाइड्रोजन बम तैयार करा लिये हैं और देह-अभिमानी मनुष्यों के स्वभाव गृह-युद्धों के लिये भी तैयार हैं तथा पापों के कारण प्रकृति भी प्रकोप करने पर उद्यत है । अत: यह जो मनुष्य प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा दिये गये ईश्वरीय ज्ञान और योग को जीवन में धारण करके दिव्य स्वभाव वाले तथा विकर्माजीत बनेंगे, वे तो परलोक में मुक्ति, और बाद में सतयुगी सृष्टि में पूर्ण सुख भी पायेंगे अन्य सभी आत्माएं धर्मराज की पुरी में दण्ड भोगकर कुछ काल परलोक में निर्वाणवस्था के बाद, पुन: अपने स्वभावनुसार द्वापरयुगी तथा कलियुगी दु:खी मनुष्य-सृष्टि में ही जन्म-पुनर्जन्म लेंगी । इसी प्रकार, वर्तमान जन्म बड़ा अनमोल है और हमें अभी दिव्य गुण सम्पन्न तथा पवित्र बनने का पुरुषार्थ करना चाहिये ।

समाचार पत्रों में छपे पुनर्जन्म सम्बन्धी वृत्तान्त

अब हम समाचार पत्रों में छपे वृत्तान्तों के आधार पर स्पष्ट कहेंगे कि हमारे संस्कार, हमारा कर्म-खाता, हमारे बन्धन इत्यादि किस प्रकार मौत के बाद हमारे साथ चलते हैं परन्तु फिर भी मनुष्यात्मा पशु-पक्ष्यादि योनियों में जन्म नहीं लेती।

जून और जुलाई, १९६८ में दैनिक नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली के रविवारीय परिशिष्टों में प्रोफेसर एच.एन. बनर्जी द्वारा लिखे कुछ समाचार प्रकाशित होते रहे हैं। प्रोफेसर बनर्जी का कहना है कि उनके पास वर्तमान काल में हुए कोई ५०० व्यक्तियों के नाम और पते आदि हैं जो कि बचपन में ही अपने पूर्व-जन्म के हालात बताने लगे थे। उनमें कोई दस-बारह व्यक्तियों का उल्लेख बनर्जी ने उक्त समाचार पत्रों में किया है। इन व्यक्तियों में से कुछ भारत के हैं, कुछ बाहर के, कुछ आदि सनातन धर्म के हैं और कुछ मुसलमान धर्म, बौद्ध धर्म और इसाई धर्म के। पुनर्जन्म-सम्बन्धी इन दिलचस्प वृत्तान्तों को पढ़ने और उन पर मनन करने से जीवन, मृत्यु, पुनर्जन्म, संस्कार आदि से सम्बन्धित अनेक रहस्यों पर प्रकाश पड़ता है। उन रहस्यों का संक्षिप्त उल्लेख यहां किया जायेगा। आप देखेंगे कि पुनर्जन्म सम्बन्धी यह समाचार परमपिता परमात्मा शिव द्वारा समझाये गये सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं।

पुनर्जन्म के समाचार द्वारा आत्मा के बारे में नास्तिकता का खण्डन

नवभारत टाइम्स के लगातार सात परिशिष्टों में पुनर्जन्म-सम्बन्धी जो समाचार, फोटो, नाम और पते सहित छपे हैं, उनसे कट्टर से कट्टर नैरात्म्यवादी को भी इतना तो मानना ही चाहिए कि शरीर से भिन्न आत्मा नाम की कोई अविनाशी चीज़ है। जिन आठ-दस बच्चों का हाल प्रकाशित किया गया है, उन बच्चों ने बोलना सीखते ही अपने पुनर्जन्म

का हाल बताया, अपने पिछले माता-पिता तथा सम्बन्धियों का भी परिचय दिया और जब उन बच्चों को उन द्वारा बताये स्थानों के निकट ले जाया गया तो उन्होंने अपने पूर्वजन्म के घर, दुकान, स्कूल आदि को पहचान लिया। इसके अतिरिक्त, उन्होंने पूर्व-जन्म की कुछ ऐसी भी बातें बताईं कि उनके पूर्व-जन्म के सम्बन्धी मान गये कि हां, उस व्यक्ति के साथ उनकी यह बातें हुई थीं। सभी बच्चों ने यह भी बताया है कि पूर्वकाल में उनकी मृत्यु किस प्रकार से हुई थी। अब इससे अधिक स्पष्ट और प्रत्यक्ष प्रमाण पूर्वजन्म के बारे में क्या दिया जा सकता है ? यदि इस संसार में जब कोई व्यक्ति किसी घटना का स्थल, समय, परिस्थिति आदि ठीक प्रकार से बताता है और उसके कथन के विरुद्ध कोई साक्षी नहीं मिलती तो न्यायालय द्वारा उसके ही हक में फैसला होता है। अत: जबकि इन व्यक्तियों के पूर्वजन्म के मित्र तथा सम्बन्धी, इन द्वारा बताये पूर्व वृत्तान्तों की साक्षी देते हैं तो पुनर्जन्म के सिद्धान्त को सत्य मानना ही न्याय है। यों भी सोचने की बात है कि मनुष्य की मृत्यु होने पर उसका शरीर तो जला या दफना दिया जाता है, अत: इस जन्म में यदि कोई बच्चा पूर्व जन्म के हालात बताता है तो स्पष्ट है कि शरीर के न रहने पर भी एक वस्तु बची रहती है, जोकि दूसरा शरीर धारण कर लेती है और अमर रहती है। अतएव आत्मा का अस्तित्व तो सिद्ध ही है।

फिर, जो लोग यह मानते हैं कि ब्रेन (Brain) या मस्तिष्क ही सब-कुछ है, उन्हें भी अपने मन्तव्य पर पुनर्विचार करना चाहिए। ब्रेन तो शरीर के साथ ही जल जाता है, दूसरा शरीर लेने पर दूसरा ब्रेन मिलता है। दूसरे ब्रेन को पहले जन्म के वृत्तान्तों का क्या पता और पूर्वजन्म के सम्बन्धियों से उसका क्या लगाव; उनसे उसका भावात्मक (emotional) सम्बन्ध क्यों ?

देह-अभिमान अज्ञानता पर आधारित

पुनर्जन्म के बारे में छपे समाचारों से यह स्पष्ट है ही कि देह से अलग

'आत्मा' नाम की कोई चेतन वस्तु है जो कि अपने लिये 'मैं' शब्द का प्रयोग करती है। यों पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाले लोग आत्मा के अस्तित्व को मानते भी हैं परन्तु व्यावाहारिक जीवन में आज सभी नर-नारी स्वयं को देह मान कर बरतते हैं। इसी देह-अभिमान के कारण ही मनुष्य के जीवन में राग-द्वेष, मनोविकार और उनके परिणाम स्वरूप दुःख है। यह बात हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे :-

लंका में हुआ वृत्तान्त

प्रोफेसर बनर्जी के, ७ जुलाई १९६८ को प्रकाशित हुए लेख में यह एक समाचार भी लिखा है कि 'नवम्बर, १९६२ में लंका देश में नूगेगोड नगर में श्री और श्रीमती जयसेना नामक युगल के घर एक लड़का पैदा हुआ। दो वर्ष की आयु में ही बच्चे ने अपने इस जन्म की मां से कहना शुरू किया — 'तुम मेरी असली माँ नहीं हो, मेरी असली माँ वेवनगोडा नगर में रहती है।' ऐसी बातों से उसकी मां दुःखी तो ज़रूर हुई मगर अप्रैल, १९६५ तक उसने बात की गम्भीरता को नहीं समझा। एक दिन लड़के समेत जयसेन परिवार के लोग अपने दोस्तों से मिलने मटाले नगर को जा रहे थे। रास्ते में २४ मील के पत्थर के गुज़रते ही बच्चा सीट पर खड़ा होकर चीखने लगा — 'मेरी मां यहां रहती है !' मां ने बच्चे की सच्चाई की तह तक पहुंचने की ठान ली। ....

बच्चे को कहा गया कि वह कार के आगे-आगे चले और दिखाये कि उसकी असली मां कहां है। बच्चे को मिठाई की कुछ गोलियाँ दी गयीं कि वह अपनी असली मां को दे। बच्चा भीड़ को चीरता हुआ चला और उसने अपनी पूर्व जन्म की मां (जिसे वह अब 'असली मां' कहता है) 'श्रीमती विनी सेवाविरले' के पैरों पर मिठाई का पैकिट रख दिया। वह उनसे ऐसे मिला जैसे अपने घर वालों से मिल रहा हो। बच्चे ने अपने भाई को भी पहचान लिया और उसे (भाई को) असली नाम से पुकारते हुए, अपनी 'असली मां' को याद दिलाया कि एक बार उसके

भाई ने उसे पीटा था। बच्चे ने चाचा चार्ली के बिजली के कारखाने की बात भी की और अपने खेतों की तरफ भी इशारा किया। इन बातों से श्रीमती सेनाविरत्ने (पूर्व जन्म की मां) हक्का-बक्का रह गई और उन्होंने माना कि १९६० में उनका जो बच्चा मर गया था, उसी ने ही अब जयसेना के बेटे के रूप में जन्म लिया है।

स्वयं आत्मा होते हुए भी देह का अभिमान

उपर्युक्त समाचार पर विचार करने से स्पष्ट है कि बच्चा अपने पूर्वजन्म के हालात को जानते हुए भी, अर्थात् पुनर्जन्म को मानते हुए भी स्वयं को एक 'अविनाशी आत्मा' मानने की बजाय एक देह ही मानता है। यदि वह स्वयं को एक देह न मानकर एक आत्मा मानता तो पूर्वजन्म की मां को 'मेरी असली मां न कह कर मेरे पूर्व जन्म की देह की मां कहता क्योंकि श्रीमती सेनाविरत्ने ने उसकी पूर्व देह को जन्म दिया था और श्रीमती जयसेना ने अब उसकी वर्तमान देह को जन्म दिया है, वह स्वयं तो अविनाशी है जो कि देह के जला दिये जाने के बाद भी मरा नहीं। परन्तु देखिये कि मनुष्य का देह-अभिमान इतना पक्का हो जाता है कि वह पूर्व देह को त्याग देने के बाद भी उस देह की माता को अपनी माता मानता है। वर्तमान देह की माता को अपनी माता मनना तो देह-अभिमान है ही, पूर्वजन्म की देह के जलाये जा चुकने के पश्चात् और नई देह लेने के बाद भी अपनी पूर्व देह की स्मृति का होना तथा स्वयं को पूर्व देह मानना और उस पूर्व देह के सम्बन्धियों से पूर्व नातों का व्यवहार करना तो सिद्ध करता है कि मनुष्य पक्का देह-अभिमानी (Body-Conscious) बन चुका है। उसका यह देह-अभिमान आत्मविस्मृति और अज्ञानता पर आधारित है। ज्ञानवान मनुष्य तो स्वयं को 'आत्मा' निश्चय करता है और सभी दैहिक सम्बन्धों को अल्पकालीन मानता है।

दूसरा निष्कर्ष

देह-अभिमान से राग-द्वेष और राग-द्वेष से ही दुःख

पुनर्जन्म के हालात को पढ़ने से यह भी स्पष्ट होता है कि देह-अभिमान से ही राग-द्वेष इत्यादि की उत्पत्ति होती है। उदाहरण के तौर पर ६ जून, १९६८ के नवभारत टाइम्स के रविवारीय परिशिष्ट में छपे इस समाचार को पढ़िये — "इस्माईल का जन्म १९५६ में तुर्की में आदान जिले के एक पंसारी और कसाई का धंधा करने वाले एक परिवार में हुआ था। एक दिन अपने बाप के पास लेटे हुए उसने कहा — "मैं असल में 'अबीत सुजुल्मस' हूं, जिसे कत्ल कर दिया गया था।" इस्माईल ने अपने पूर्वजन्म का सारा समाचार सुनाया और यह भी बताया कि उसका कत्ल किसने और कहां किया था। ये सभी बातें ठीक निकलीं। इस्माईल हमेशा अपने पुराने परिवार और प्रियजनों के ख्यालों में डूबा रहता है; कभी-कभी उसकी यह हालत देखकर उसके मां बाप के लिये समस्या बन जाती है ... एक बार इस्माईल के पिता कुछ तरबूज लेकर आये थे। इस्माईल ने कहा कि इसमें से सबसे बड़ा "मेरी बेटी" गुलसरीन के लिये भेज दो। जब उसके बाप ने ऐसा करने से इनकार कर दिया तो वह फूट-फूट कर रोने लगा।

अब आप देखिये कि यद्यपि इस्माईल एक छोटा-सा बच्चा है तथापि पूर्व देह की स्मृति के कारण वह अपने पिछले जन्म की बेटी को आज भी अपनी बेटी मानता है और पिता-पुत्री के राग में लिप्त होकर बात करता है, तभी तो वह उसके लिए तरबूज भेजने की बात करता है। उसे पूर्व जीवन की दैहिक पुत्री से आज भी इतना राग है कि यदि उसके लिए तरबूज भेजने को कोई इनकार करता है तो इस्माईल फूट-फूट कर रोने लग जाता है और अपने वर्तमान दैहिक पिता से रुष्ट हो जाता है। तो सिद्ध है कि देह-अभिमान से राग की उत्पत्ति होती है। जब मनुष्य के राग पर आधारित इच्छा की पूर्ति में कोई व्यक्ति रुकावट डालता है तो

उस व्यक्ति के प्रति उसके मन में रोष पैदा हो जाता है और राग-द्वेष के परिणामस्वरूप दु:ख पैदा होता है, जैसे कि उपरोक्त उदाहरण में इस्माईल अपने रागात्मक स्वभाव की तृप्ति न होने के कारण फूट-फूट कर रोया और दु:खी हुआ ।

अत: यदि मनुष्य विकारों तथा दु:खों से छुटकारा पाना चाहता है तो उसे चाहिए कि स्वयं को एक अविनाशी आत्मा निश्चय करे वरना उसके दु:खों का अन्त न होगा क्योंकि देह-अभिमान के कारण मनुष्य में जो राग-द्वेष पैदा होते हैं, उनसे लिप्त मनुष्य के कर्म विकर्मों का रूप धारण करते हैं और वह विकर्म बुरे संस्कारों के रूप में आत्मा अपने साथ ले जाती है और उन संस्कारों के परिणाम-स्वरूप पुन: दु:ख पाती है । यह बात निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है ।

तीसरा निष्कर्ष:
आत्मा कर्मों का लेखा-जोखा साथ ले जाती है

ऊपर, इस्माईल के पुनर्जन्म का उल्लेख हम कर आये हैं, उसी के जीवन की इस घटना का उल्लेख भी दिनांक ६ जून, १९६८ के नवभारत टाइम्स के रविवारीय परिशिष्ट में प्रकाशित हुआ है :— "एक बार मुहम्मद नामक एक आईसक्रीम वाला तुर्की के मिदिक जिले में आया जहां आजकल इस्माईल रहता था । इस्माईल ने उसे रोक कर पूछा — 'क्या तुम मुझे पहचानते हो ?' जब आईसक्रीम वाले ने इन्कार किया तो इस्माईल ने कहा : 'तुम मुझे भूल गये हो, मैं अबीत हूं, पहले तुम आईसक्रीम की बजाय तरबूज और साग-भाजी बेचा करते थे, उस आदमी ने इस बात की तस्दीक की और बच्चे के साथ बहुत देर तक बातें करने के बाद मान गया कि उसके (इस्माईल) में अबीत का पुर्वजन्म हुआ है । जब उसका बाप आईसक्रीम के पैसे देने लगा तो लड़के ने कहा — 'अब्बा, उसको पैसे मत दो क्योंकि उसकी तरफ मेरे तरबूज के पैसे निकलते हैं ।'

मुहम्मद ने अबीत के कर्जे की बात मानी ।

अब आप देखिये कि इस्माईल को तो अपने पूर्व जन्म की यह बात मालूम थी कि जब वह अबीत नाम वाला व्यक्ति था तो मुहम्मद (तरबूज बेचने वाला व्यक्ति) की तरफ उसके पैसे रहते थे । अत: उसने तो अब आईसक्रीम लेकर वह पिछला हिसाब-किताब थोड़ा-बहुत चुकता कर दिया, परन्तु किसी को अपने पूर्व-जन्म के हालात न भी मालूम हों तो भी पिछले जन्म के लोगों के साथ उसका कुछ हिसाब-किताब रहा तो होता ही है ना ? उसी पिछले हिसाब-किताब के कारण ही मनुष्य को वर्तमान जन्म में किन्हीं व्यक्तियों से अनायास और बिना विशेष परिश्रम के, कुछ प्राप्ति होती है और अन्य कुछेक को उसे यों ही देना-दिलाना पड़ता है । अत: मनुष्य को चाहिए कि वह न केवल स्वयं को एक आत्मा निश्चय करे बल्कि पुरुषार्थ करने के बाद भी यदि किसी व्यक्ति से उसे घाटा होता है या किसी प्रकार से कुछ हानि होती है तो उसे अपना पूर्वजन्म का हिसाब-किताब समझ कर शान्ति धारण करे । यत्न करने के बाद भी योजना के विपरीत फल निकलता है तो उसे भावी अथवा पूर्व कर्मों का फल मानकर धैर्य और सन्तोष धारण करना चाहिये ।

चौथा निष्कर्ष:
मौत के बाद संस्कार आत्मा के साथ

विचार करने पर आप यह निष्कर्ष भी लेंगे कि मनुष्यात्मा न केवल अपने पूर्व जन्म का कर्म-खाता साथ ले जाती है बल्कि उसके पिछले संस्कार भी उसके साथ ही जाते हैं । हम यह बात आपको एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे :-

दिनांक ३० जून, १९६८, को प्रकाशित, नवभारत टाइम्स के परिशिष्ट में लिखा है — 'कृष्ण किशोर को अपने जुड़वां भाई कृष्ण कुमार से बड़ा प्यार है । कुष्ण कुमार उसे अपनी हर चीज़ देता है । एक दिन

जब उससे पूछा गया कि वह कृष्ण कुमार को इतना क्यों चाहता है तो उसने कहा कि वह पुर्वजन्म में उसका (कृष्ण किशोर) रसोइया था। एक दिन बच्चे ने अपनी मां को बताया कि उसे उनके घर का खाना अच्छा नहीं लगता क्योंकि वह अपने घर में बहुत अच्छा खाता था, उसे अच्छी-अच्छी मिठाइयां मिलती थीं, उसके पास एक बन्दूक, दो कारें और एक बड़ा घर था, उसके पाँच बेटे और पाँच बहुएं थीं। उसने कहा कि उसका नाम 'परुषोत्तम' था। किसी दिन जब इस लड़के ने मिठाई मांगी तो उसे प्लेट में थोड़ी शक्कर रख दी गई। उसने गुस्से में यह कहकर फेंक दी कि उसे पहले ढेरों रसगुल्ले मिलते थे और उसे घर न ले जाया गया तो वह मर जायेगा। ... लड़के के चाचा और माता आदि ने जब सब बातों की जांच की ठानी तो लड़के ने अपने पूर्वजन्म का घर, सम्बन्धी आदि पहचाने और इस बात की तस्दीक हुई कि पिछले जन्म में जब वह पुरुषोत्तम दास था तो उस पुरुषोत्तमदास के पास दो कारें और एक बन्दूक थी और वह मिठाइयों के बड़े शौकीन थे।

अब आप देखिये कि मिठाई खाने का जो शौक या चस्का पिछले जन्म में पुरुषोत्तम को लगा था, वह अब तक अर्थात् मरने के बाद कृष्ण किशोर के रूप में उसका जन्म होने पर भी है, तभी तो वह पूर्वजन्म के अपने रसोइये (अब जुड़वां भाई) को प्यार भी करता है और मिठाई न मिलने पर कहता है कि यदि मुझे 'अपने घर' न भेजा गया तो मैं मर जाऊंगा। गोया मिठाई या रसगुल्ला के बिना उसका जीवित रहना ही मुश्किल है और वर्तमान घर में रहना उसे नहीं भाता। स्पष्ट है कि इस जन्म में यदि जीभ पर कन्ट्रोल नहीं होगा तो अगले जन्म में भी हम चस्के का गुलाम बन कर रहेंगे। इसी प्रकार, यदि अन्यान्य इन्द्रियों पर भी हम काबू नहीं पायेंगे तो अगले जन्म में हमें उनके वशीभूत होना पड़ेगा। बल्कि आपने देखा कि रसगुल्लों के स्वाद के पीछे भागने वाले को अब रसगुल्लों की बजाय शक्कर ही पल्ले पड़ी। जो व्यक्ति जिस विषय के

पीछे भागता है अथवा जिस विषय को लिप्त होकर भोगता है, उस मनुष्य की तृष्णा उतनी ही बढ़ती है । अत: मनुष्य को अपने कर्मों के लिए बड़ा सतर्क होना चाहिये क्योंकि कर्मों से संस्कार बन जाते हैं और संस्कार मृत्यु के बाद भी आत्मा के साथ जाते हैं और अगले जन्म में भी उसे परेशान करते हैं तथा उनके वशीभूत हुआ मनुष्य फिर भी वैसा ही कर्म करता है । मोह-ममता और संस्कार ऐसी रस्सियां हैं जो दिखाई नहीं देतीं परन्तु मनुष्य को बांधे रखती हैं । यह बात कई उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की जा सकती हैं ।

पांचवा निष्कर्ष
मोह-ममता और बुरे संस्कारों के कारण दु:ख पूर्ण जन्म-मरण का बन्धन

ऊपर, कृष्ण किशोर और कृष्ण कुमार के पुनर्जन्म का जो उदाहरण दिया गया है, उस पर विचार कीजिए । कृष्ण किशोर पूर्व जन्म में 'पुरुषोत्तम' नाम वाला एक सेठ था और कृष्णकुमार उसका रसोइया । उस पिछले जन्म में पुरुषोत्तम को मिठाइयों का चस्का था और उसका रसोइया उसे अच्छी मिठाइयां बनाकर देता था । इस कारण से पुरुषोत्तम को अपने रसोइये में मोह-ममता उत्पन्न हुई और मिठाइयों में आसक्ति का संस्कार बना । उसका परिणाम यह हुआ कि मोह-ममता की रस्सियों से बंधे हुए उस पुरुषोत्तम का और उसके रसोइये का अगला जन्म जुड़वां भाई के रूप में हुआ और उस दूसरे जन्म में भी वे मोह-ममता की रस्सियों में बंधे रहे । इन्हीं मोह-ममता के बन्धनों का एक उदाहरण और लीजिए:-

२ जून, १९६८ के रविवारीय परिशिष्ट में बनर्जी ने लिखा है कि — 'ओआना' और जेकेलीन नाम वाली दो बच्चियां थीं । इनके पिता का नाम 'श्री पोलक' था । ये दोनों बच्चियां अपने गांव में एक-दूसरे का हाथ थामे चर्च की ओर जा रही थीं कि वे एक मोटर कार के नीचे आ गयीं ।

इनकी मृत्यु के बाद श्री और श्रीमती पोलक के घर जो जुड़वां बच्चे पैदा हुए उन्होंने अपने पूर्व जन्मों का सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने यहां तक भी बताया कि उनकी मृत्यु कार के नीचे आ जाने के कारण हुई थी। आज भी छोटी बच्ची बड़ी बच्ची से हूबहू वैसा ही व्यवहार करती है जैसा कि पूर्व जन्म में करती थी और वह यह भी कहती है कि पूर्व जन्म में वह उसकी छोटी बहन थी।

इस प्रकार के अनेक उदाहरणों से सिद्ध होता है कि मोह-ममता और संस्कार ऐसे सूक्ष्म बन्धन हैं कि जिनमें बंधा हुआ व्यक्ति जन्म-मरण भोगता तथा दुःख पाता है। अतः यदि मनुष्य दुःख-जनक जन्म-मरण के चक्कर से मुक्ति या जीवनमुक्ति प्राप्त करना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह मोह-ममता को छोड़े और अनासक्त होकर तथा रूहानी प्यार को अपनाकर व्यवहार करे वरना मनुष्य इन द्वारा खिंचा हुआ-सा, दूसरे-दूसरे घर में जन्म लेता है।

पुनर्जन्म के समाचारों द्वारा छठा निष्कर्ष
क्या मरने के बाद मनुष्य-आत्मा स्वर्ग जाती है या पशु-योनि लेती है ?

पुनर्जन्म के जो समाचार नवभारत टाइम्स तथा अन्य पत्रों में प्रकाशित हुए हैं, उन सभी द्वारा यह तो सिद्ध होता ही है कि मनुष्यात्मा पशु-पक्षी आदि योनियों में जन्म नहीं लेती क्योंकि आज तक किसी ने भी यह नहीं कहा कि पूर्व जन्म में वह घोड़ा या कबूतर था, बल्कि सभी ने अपने पूर्व जन्म में मानव-शिशु होने का ही दावा किया है जो कि प्रमाणित भी हुआ है। परन्तु इसके अतिरिक्त इन समाचारों से यह भी सिद्ध होता है कि मरने के बाद कोई भी आत्मा स्वर्गवासी नहीं हुई बल्कि उसने इसी संसार में किसी-न-किसी घर में दूसरा जन्म लिया है। आज तक किसी भी आत्मा ने यह नहीं कहा कि वह स्वर्ग गयी थी या नरक

गयी थी जहां पर कि कोई वैतरणी नदी थी या गाय की पूंछ को पकड़ कर पार होना पड़ता था। अत: हरेक व्यक्ति के मरने के बाद, उसके घर वाले यह जो कह दिया करते हैं कि "वह स्वर्गवासी हो गया है," यह सरासर ग़लत है और शास्त्रवादी लोग यह जो कहते हैं इस संसार से नीचे कहीं नरक है, सह भी बिल्कुल ग़लत है। वास्तव में मनुष्यात्मा को मनुष्ययोनि में ही पुनर्जन्म लेकर सुख या दु:ख भोगना पड़ता है और यही संसार द्वापर और कलियुग में नरक है तथा सतयुग और त्रेतायुग में स्वर्ग है।

सातवां निष्कर्ष

आत्माओं का अलग-अलग होना सिद्ध

इसके अतिरिक्त, पुनर्जन्म के समाचारों से यह भी सिद्ध होता है कि आत्माएं अलग-अलग हैं और कर्त्ता-भोक्ता आत्मा ही है ना कि देह। दो आत्माओं का अपने पूर्व जन्म के हालात बताने से ही सिद्ध है कि आत्माएं अलग-अलग हैं और उनका पुनर्जन्म भी उन्हीं कर्मों के आधार पर अलग-अलग होता है। अत: 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' का सिद्धान्त, अर्थात् यह सिद्धान्त कि सभी एक ब्रह्म ही के अनेक रूप हैं, गलत है। पुनश्च, इन समाचारों से यह भी सिद्ध होता है कि अपने कर्मों का फल आत्मा स्वयं ही भोगती है। मरने के बाद शरीर का तो अन्त हो जाता है और आत्मा पुनर्जन्म होने पर कहती है कि पूर्व जन्म में रसगुल्ले मिलते थे और इस जन्म में शक्कर मिलती है। कई लोग कहते हैं कि मन-बुद्धि रूप एक 'कारण शरीर' अथवा 'लिंग शरीर' आत्मा को होता है, परन्तु वास्तव में आत्मा स्वयं ही बिन्दु रूप लिंगाकार है और मन-बुद्धि उससे भिन्न-भिन्न नहीं बल्कि आत्मा की अनुभवशीलता तथा विचारशीलता आदि का नाम है; वही उसके जन्म-कर्म तथा भोग का कारण है।

आठवां निष्कर्ष

पुनर्जन्म के सिद्धान्त द्वारा नियति की बात सिद्ध

पुनर्जन्म के जो समाचार आज तक छपे हैं उन द्वारा इस संसार के सभी वृत्तान्तों का पूर्व-निश्चित होना भी सिद्ध होता है । उदाहरण के तौर पर पिछले पृष्ठ पर मोह-ममता और संस्कारों की बात को स्पष्ट करने के लिए हमने पोलक की दो बच्चियां 'जोआना' और 'जेकेलीन' का जो उदाहरण दिया है, उस पर ही विचार कीजिए । पूर्व जन्म में जब वह दोनों बहनें चर्च की ओर जा रही थीं तो कार के नीचे आ कर वे दोनों मर गयी थीं और अब दोनों ने अपने उसी पिता पोलक के घर फिर जन्म लिया है । क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि दोनों की मृत्यु और पोलक के घर दुबारा जन्म पूर्व-निश्चित थे, वरना यदि वे न मरतीं तो पोलक के घर उनका दूसरा जन्म कैसे होता ? पुनश्च, क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कार का एक विशेष समय चर्च की ओर के रास्ते से गुजरना, दोनों बच्चियों का भी उसी रास्ते पर जाना, फिर अनायास कार के नीचे आ जाना, कार को पहले से ब्रेक न लग सकना, उधर पोलक की स्त्री के गर्भ में पहले से ही उनके दूसरे शरीर का तैयार होना — यह सभी बातें पूर्व-निश्चित थीं ? घटनाओं के पूर्व-निश्चित (Per-destined) होने के कारण ही तो आज भी किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर लोग उसके सम्बन्धियों को कहते हैं — "जो होना था हो गया, भावी ही ऐसे बनी हुई थी; तब रोने का क्या अर्थ ?"

आपको मालुम रहे कि भावी, निश्चित या नियति (Per-destination) की मान्यता केवल भारत के आदि सनातन धर्म के लोगों की ही मान्यता नहीं है बल्कि ईसाइयों और मुसलमानों की भी यह मान्यता रही है । उदाहरण के तौर पर सेंट जान (St. John) की बाइबल में, १६ वें अध्याय में पुनर्जन्म और नियति का एक हवाला मिलता है । स्वयं ईसा के बारे में लोग बताते हैं कि उससे पूर्व के पैगम्बरों

आवश्यक होता है। फिर क्रमशः वह स्थिति भी आ जाती है जब हल चला कर धरती की उर्वरा शक्ति को ऊपर लेना आवश्यक प्रतीत होने लगता है। इसी प्रकार, भूमि की शक्ति का ह्रास होते-होते यह नौबत आ जाती है कि उसमें खाद डालना भी आवश्यक हो जाता है। ... ह्रासवाद का यह सिद्धान्त जातियों और राष्ट्रों पर भी लागू होता है। .... प्राचीन काल की वे सब जातियां जो कभी अपने शौर्य, पराक्रम और विद्वत्ता के लिए विख्यात थीं, नाम-शेष हो गयी हैं। उनके गत वैभव का चिन्ह इतिहास के पन्नों के सिवा नहीं रहा। क्या आज के लोगों के वर्तमान दशा की कोई तुलना उनके पूर्वजों की उच्चता एवं शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास के साथ की जा सकती है ?

उपर्युक्त मान्यताएं जिन्हें कि इस आर्य समाजी पत्र ने प्रकाशित किया है और लेखक ने 'वैदिक सिद्धान्त कहा है, पर विचार कीजिए। ये सिद्धान्त सही है और अनेक युक्तियों से इनकी सत्यता प्रमाणित की जा सकती हैं। इन्हीं सिद्धान्तों को प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय लोगों के समक्ष रखता है। परन्तु तब यही लोग कहते हैं कि यह सब तो आपकी कल्पना है। जब हम लोगों को यह समझाते हैं कि "सतयुग में सभी वैभव बहुतायत से प्राप्त थे और उनके लिये परिश्रम नहीं करना पड़ता था क्योंकि सभी नर-नारी श्रेष्ठ कर्म करने वाले, पवित्र तथा दैवी स्वभाव वाले थे," तब यही लोग कहते हैं कि — "सभी युग एक समान हैं। अपवित्रता, विकार, दुःख आदि तो सभी युगों में चले आये हैं।" जब हम लोगों को समझाते हैं कि 'हरेक धर्म-वंश और मनुष्यात्मा के संस्कार की चार अवस्थायें होती हैं; उनमें से पहली उत्तमता की अवस्था होती है और धीरे-धीरे ह्रास होता है,' तो ये लोग कहते हैं कि यह आपकी मनगढ़न्त बातें हैं, परन्तु आगे-पीछे यह स्वयं कहते हैं कि — "ह्रासवाद का सिद्धान्त जातियों और देशों पर भी लागू होता है।"

'ह्रासवाद' और 'अकृष्ट पच्या' नामक सिद्धान्तों पर विचार करने पर

आप इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि अब कलियुग का अन्तिम चरण है क्योंकि अब पृथ्वी में खाद और हल की आवश्यकता तो है ही बल्कि कृत्रिम खाद की भी आवश्यकता है और आज सब परिश्रम करने पर भी अन्न में वह पोषण शक्ति नहीं, जो कि कुछ समय पहले हुआ करती थी। आज जातियों देशों और धर्म-वंशों का नैतिक ह्रास भी बहुत अधिक हो चुका है — यह भी सभी मानेंगे। अत: कलियुग को अभी तक बच्चा मानना ह्रासवाद तथा अकृष्ट पच्या नामक सिद्धान्तों को यथार्थ रीति न जानना है।

पुनश्च, यह जो प्राचीन मान्यता है कि सृष्टि के आदि में लोग अधिक सभ्य, सदाचारी और श्रेष्ठ थे और कि परमात्मा ने स्वयं परमगुरु के रूप में ज्ञान दिया था क्या उससे यह सिद्धान्त नहीं स्थापित होता कि कलियुग के अन्त में परमपिता परमात्मा ने परमगुरु के रूप में, मानवीय तन के माध्यम के द्वारा, ईश्वरीय ज्ञान देकर लोगों को सभ्य और सात्विक बनाया ? वरना सतयुग में सभ्य और सदाचारी लोग कहां से आ गये ?

नरक और स्वर्ग के बारे में निष्कर्ष

इसके अतिरिक्त, ह्रासवाद के आधार पर क्या यह नहीं कहा जा सकता कि यही सृष्टि प्रारम्भ में, सतयुग में, जब पूर्ण रूप से सुख-सम्पन्न थी तब स्वर्ग था और द्वापर युग से इसका स्पष्ट ह्रास होता है, और कलियुग में यही नरक बन जाती है ? अत: यह मानना ग़लत होगा कि 'स्वर्ग' ऊपर कहीं है और नरक पृथ्वी से नीचे है। अब तो अन्तरिक्ष-यात्रियों ने भी देखा और बताया है कि चांद में न स्वर्ग है न कोई आबादी।

आत्माओं के योनि-परिवर्तन के प्रश्न पर एक नये दृष्टिकोण से विचार

यह जो मान्यता है कि मनुष्यात्मा अपने बुरे कर्मों का दण्ड भोगने के लिए पाश्विक तथा अन्यान्य योनियों में जाती है —अब हम इस मत पर दण्ड विधान के दृष्टिकोण से विचार करेंगे और देखेंगे कि क्या यह मत युक्ति-संगत है ?

न्याय अथवा कानून की दृष्टि से दण्ड के चार मुख्य उद्देश्य

सबसें पहले हमको इस बात पर विचार कर लेना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति को दण्ड क्यों दिया जाता है ? दण्ड विधान के ज्ञाता लोग (criminalogists) मानते हैं कि दण्ड के चार मुख्य प्रयोजन होते हैं। एक दण्ड तो वह है जो किसी को पहुंचाई गई हानि, क्षति, चोट या सदमें का बदला चुकाने के लिए (Retributive punishment) हो। पुराने जमाने में लोग प्राय: दण्ड का यही मुख्य अभिप्राय मानते थे। दांत के बदले दांत और आंख के बदले आंख — ऐसा दण्ड देने की उनकी इच्छा तथा प्रणाली होती थी। यदि किसी ने एक मनुष्य का धन चोरी किया हो तो किसी प्रकार उस व्यक्ति को भी उसके बदले में धन से वंचित करना उनकी दण्ड-व्यवस्था का उद्देश्य रहता था। आज भी दण्ड देने का थोड़ा-बहुत यह उद्देश्य होता है। मान लीजिये कि किसी मनुष्य ने एक प्रतिष्ठत व्यक्ति का अपमान किया है। अब यदि वह मनुष्य उस व्यक्ति के विरुद्ध न्यायालय में मान-हानि का मुकद्दमा करे और दावा जीत ले तो न्यायालय उसे एवज़ाना दिलायेगा। दण्डित व्यक्ति को बदले में अपमानित होना पड़ेगा क्योंकि वह मुकद्दमा हार कर झूठा सिद्ध हुआ; उसे जुर्माना भी देना पड़ा और लज्जित भी होना पड़ा। इस मर्त्य-लोक में मनुष्य का तथा समाज का स्वभाव ही बदला लेने का है। यदि पाकिस्तान में लोग भारतीय दूतावास पर आक्रमण करके क्षति पहुंचाते

हैं तो यहां के कई लोगों की इच्छा होती है कि वे पाकिस्तान के दूतावास को क्षति पहुंचाएं। पुराने ज़माने में इस प्रकार का रिवाज अधिक था। लोग यह मानते थे कि अपराधी को बदले में दण्ड मिलना ही चाहिए ताकि उसे पता चले कि दूसरे को हानि पहुंचाने का क्या परिणाम निकलता है और जिस व्यक्ति को उसने हानि पहुंचायी है, वह भी बदला चुका सके। पुराने दार्शनिकों तथा धार्मिक विचारकों, जैसे कि अफलातून (Plato) ने भी इस प्रकार की सज़ा की सिफारिश की। वे यह समझते थे कि इससे अपराधियों का पाप मिट जाता है और बदला भी चुक जाता है। इसलिए वे इसे पापान्तकारी दण्ड (Expiatory Punishment) भी मानते थे।

दण्ड का दूसरा उद्देश्य

दण्ड का दूसरा उद्देश्य यह रहा है कि अपराधी की पीड़ा को देखकर दूसरे लोग भी अपराध करने से बचकर रहें। अत: इस उद्देश्य से दण्ड को समाज के आगे उदाहरण कायम करने वाला (Exemplary Punishment) भी कहते हैं। यही एक प्रकार से दूसरों को अपराध से रोकने वाला (Deterrent) दण्ड भी है। यदि एक मनुष्य किसी को कत्ल करता है तो उसे आयु-भर कैद दे देने से दूसरे लोगों पर इसका प्रभाव पड़ता है। वे डर के कारण इस अपराध से बचकर रहते हैं। अत: दूसरों के आगे एक उदाहरण कायम करने वाला (Exemplary punishment) दण्ड भी है और उन्हें बुराई से रोकने वाला (Deterrent) भी। दण्ड देने का एक उद्देश्य यह भी होता है कि अपराधी फिर ऐसा कर्म न कर सके (Preventive punishment) ताकि समाज को उससे रक्षा मिले, उसके कुकृत्यों से बचाव मिले। जेल में बन्द रहने से अपराधी को छूट नहीं होती कि वह लोगों की जेबें काटे अथवा नगर में दंगा करे या भड़काने वाले भाषण करे। अत: ऐसे अपराधी को कारावास दे दिया जाता है ताकि समाज भी चैन से रहे और

अपराधी भी दण्ड भोगकर आगे के लिए अपराध न करे। किसी अपराधी को किसी नगर में न आने देना, उसे वहाँ भाषण करने का अधिकार न देना या अपने मकान से बाहर निकलने पर प्रतिबन्ध लगा देना, यह सभी उसे आगे और अपराध करने से रोकने के लिये दण्ड (Preventive or Deterrent punishment) है।

अपराधी का सुधार

इन सभी के अतिरिक्त आजकल लोगों का एक यह भी दृष्टिकोण रहता है कि अपराधी को दण्ड देने के साथ-साथ उस का सुधार भी किया जाय। वे मानते हैं कि मनुष्य किन्हीं परिस्थितियों, मजबूरियों, सामाजिक वातावरण या त्रुटियों के कारण अपराध करता है, अत: उसे केवल दण्ड देना उचित नहीं है बल्कि उसकी उन कमियों को कुछ ठीक करना तथा उस व्यक्ति को मानसिक रूप से सुधारना ताकि वह फिर अपराध न करे — यह भी दण्ड का एक उद्देश्य होना चाहिये, जेल में आने पर दण्ड के साथ इस दृष्टिकोण से भी कुछ किया जाना चाहिये। ऐसे लोगों का विचार है कि यह कार्य हुए बिना दण्ड दूसरों के आगे कोई आदर्श अथवा उदाहरण उपस्थित नहीं करता और अपराधी को भी आगे फिर अपराध करने से रोकने (Preventive or Deterrent Punishment) का कार्य नहीं करता। अपराधी जेल से बाहर निकलने के बाद फिर अपराध करना शुरू कर देता है। यह बात हर देश में कानूनी विषयों में शोध कार्य करने वालों ने देखी है।

अपराधी को अपराध से परिचित कराना ज़रूरी

ऊपर, हमने दण्ड के चार मान्य उद्देश्य बताये हैं। इस विषय में एक महत्त्वपुर्ण और ध्यान देने येग्य बात यह भी है कि यह न्याय व्यवस्था के नियम हैं कि किसी भी अपराध का दण्ड देने से पहले अपराधी को यह बताया जाता है कि उसका अपराध क्या है ? यदि कोई अपराधी पागल हो या जिस समय उसने अपराध किया था तब यह पागलपन — जैसी

किसी बीमारी की हालत में था तो दण्ड नहीं दिया जाता । इसका कारण स्पष्ट है । जबकि दण्ड देने से अपराधी अपने अपराध को समझेगा ही नहीं तो वह आगे के लिए रुकेगा भी नहीं; सुधरेगा भी नहीं और दूसरों के आगे उदाहरण भी नहीं बन सकेगा । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अपराधी को अपराध का दंड देने का प्रयोजन तभी सिद्ध होता है जबकि उसकी बुद्धि, उसका मन अथवा उसकी सूझ ऐसी अवस्था में हो कि वह अपने अपराध को तथा उस द्वारा समाज को होने वाली हानि को तथा नियम और न्याय भंग के दोष को समझ सके ।

अपराधी के साथ न्याय के बारे में एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण

आज अपराध के मामले में जो विशेषज्ञ लोग हैं, उनका तो यह भी मन्तव्य है कि अपराधी को जेल में भेजकर समाज से जो उसे अलग कर दिया जाता है और शिक्षा, सुधार, बौद्धिक विकास तथा चारित्रिक उन्नति के कार्यक्रमों से लाभ उठाने से वंचित कर दिया जाता है — यह वास्तव में उस व्यक्ति के साथ कोई न्याय नहीं है, न ही अपराध के लिए सही दण्ड है । उस व्यक्ति को दण्ड मिले ताकि आगे के लिये वह अपराध न करे — यह तो ठीक है, परन्तु यदि उसे अच्छे वातावरण, अच्छे संगठनों, अच्छे स्थानों में जाने के लिये ही रोक दिया जायेगा तो वह आगे के लिये अपराध करने से रुकेगा कैसे ? वह तो अन्य अपराधियों के संग में अन्यान्य अपराधों की भी जानकारी तथा ढंग सीखेगा और पक्का अपराधी बनकर निकलेगा । इससे समाज को एक तो यह हानि है कि वह सदा के लिए उस व्यक्ति को गंवा बैठेगा, अपने लिए एक शत्रु पैदा कर लेगा और उस व्यक्ति के साथ भी यह अन्याय है कि एक अपराध करने के परिणाम-स्वरूप उसे आगे के लिए अच्छा नागरिक बनने का अवसर देने की बजाय, लज्जित, घृणित एवं दण्डित बनाकर अपराधी समाज (कैदियों) के साथ सम्बन्ध स्थापित करने पर मजबूर कर दिया

गया । अत: इस विचार से कानून-विशेषज्ञों का कथन है कि – 'Open a School and close a Prison', अर्थात् एक विद्यालय खोलो और एक जेल को बन्द करो ।

क्या दण्ड-भोग के लिये मनुष्यात्मा को पशु-योनि में जाने की आवश्यकता है ?

अब हम ऊपर बताये गए सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर विचार करेंगे कि क्या अपने पापों का फल भोगने के लिए मनुष्य आत्मा को पश्वादि योनियों में पुनर्जन्म लेने की आवश्यकता है या यह प्रयोजन मनुष्य-योनि में ठीक सिद्ध हो सकता है ?

सबसे पहले यह बात तो स्पष्ट है ही कि न्याय-विद्या (Juris-prudence) विशेषज्ञों का यह जो विचार है कि अपराधी को उस अवस्था में दण्ड नहीं मिलना चाहिए जब उसका मस्तिष्क ठीक हालत में न हो अथवा कि अपराध का दण्ड देने का उद्देश्य यह है कि अपराधी को यह महसूस हो कि उसने अपराध किया है, जिसका परिणाम यह दण्ड है और कि आगे के लिये अपराध नहीं करना चाहिये – इस विचार की पूर्ति तो मनुष्य-जाति में ही हो सकती है । यदि मनुष्य अपने पापों के फलस्वरूप पशु-पक्ष्यादि योनियों में जन्म ले तो उस अल्प बुद्धि वाली अवस्था में, मानसिक ह्रास की दशा में उसे कौन बतायेगा तथा वह कैसे समझेगा कि वह पूर्व-काल में किए हुए अपराधों या पापों का फल इस योनि में भोग रहा है ? इस के अतिरिक्त, उस योनि में तो उसे सुधरने का अवसर भी नहीं मिलेगा । पशुओं में मनुष्यों-जैसे कानून तो होते नहीं कि जिन का वह पालन करना सीखेगा । न उनमें कोई चारित्रिक शिक्षा की व्यवस्था होती है कि वह सीखेगा तथा सुधरेगा । इससे तो उसकी गिरावट होगी और वह पक्का अपराधी बन जायेगा । उदाहरण के तौर पर मान लीजिये कि कोई व्यक्ति काम-वासना का गुलाम है और व्यभिचार या पर-स्त्री संग (Adultery) करता है । उसके दण्ड में यदि

वह कुत्ते की योनि में पुनर्जन्म ले, तब वहाँ तो बहन-भाई या माता-पुत्र के अन्तर का भी ज्ञान नहीं होता बल्कि वह जाति तो 'काम-प्रधान' है । अत: उस योनि में दण्ड मिलने से तो कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । उस योनि में भेजे जाने से न तो उस मनुष्यात्मा के साथ न्याय है, न वह दण्ड-सिद्धान्त के अनुकूल है और न यह समाज के लिए लाभदायक है । यदि इस प्रकार मनुष्य को अन्य योनियों रूप कारावास में भेजा जाता रहे तो सारा मनुष्य-समाज ही समाप्त हो जायेगा और अपने सदस्यों से वंचित हो जायेगा, जबकि हरेक जाति का स्वभाव यह है कि वह अपनी जाति का नाश या क्षय नहीं चाहती ।

एक उदाहरण

अब मान लीजिये कि किसी व्यक्ति ने एक मनुष्य से रिश्वत ली अथवा धोखे से, बनावट से या अन्य किसी प्रकार से उसका पैसा मार लिया । अब यदि इसके दण्ड में उसे बिल्ली की योनि मिले तो उससे तो उस व्यक्ति को, जिसका उसने पैसा मारा था न तो एवज़ाना अथवा बदले में कोई रकम मिली, न ही पैसा मारने वाले व्यक्ति को दण्ड के रूप में कोई पैसा देना पड़ा । अत: जुर्माना, क्षति-पूर्ति या मुआवज़ा चुकाने के लिये जो दण्ड (Retributive punishment) होता है, यह कोई वैसा दण्ड तो न हुआ । बिल्ली की योनि में जाने के बजाये तो यह अच्छा है कि वह आत्मा किसी निर्धन व्यक्ति के घर जन्म लेकर उस मनुष्य के घर नौकर बने जिसका उसने पैसा मारा था और अपनी मज़दूरी द्वारा क्षति-पूर्ति करे । (हम देखते भी हैं कि कई नौकर कार्य अधिक करते हैं परन्तु मालिक से उन्हें उतना वेतन नहीं मिलता) अथवा वह अपराधी अगले जन्म में किसी अच्छे कर्म के फलस्वरूप कोई धनाढ्य व्यक्ति बने परन्तु किसी कारण वश (किसी व्यापार में या अन्य किसी रीति से) उतना पैसा देना पड़ जाय जितना कि पुनर्जन्म में उसने उस मनुष्य का मारा था । तो देखिये, मनुष्य-योनि में बदला चुकाने तथा क्षतिपूर्ति करने

के रूप में दण्ड-भोग किया जा सकता है न कि पशु-योनि में। इसका एक और उदाहरण लीजिये। अनुमान कीजिए कि कोई व्यक्ति एक प्रतिष्ठित मनुष्य की मान-हानि करता है। इस अपमान या निन्दा रूप पाप के दोष में मान लीजिये कि वह किसी पशु-पक्ष्यादि योनि में पुनर्जन्म लेता है। तो इस प्रकार की व्यवस्था से वह उस प्रतिष्ठित मनुष्य की क्षति-पूर्ति कैसे कर सकता है जिसका कि उसने अपमान किया था? स्पष्ट है कि नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त, वह स्वयं भी तो अपमानित नहीं हुआ? यदि उसे मनुष्य-चोले में कोई दण्ड मिले (जेल मिले, जुर्माना देना पड़े या उसका अपना किसी प्रकार किसी कारण से अपमान हो) तभी तो बदले के दण्ड (Retributive Punishment) का प्रयोजन सिद्ध हुआ माना जायेगा न? और, आप देखिये कि संसार में जब किसी मनुष्य का दूसरा कोई मनुष्य पैसा मार लेता है या अपमान करता है तो उसके धार्मिक स्वभाव वाले मित्र भी कहते हैं — अजी, पिछले जन्म का कोई हिसाब रहा होगा, वही चुकता हो रहा होगा। तो स्पष्ट है कि सभी इस बात को विवेक-युक्त भी मानते हैं कि पिछले जन्म के कर्म का दण्ड मनुष्य, योनि में मिलता है क्योंकि मनुष्यात्मा का कर्म-खाता मनुष्यों से ही जुटता है और उसे बदले में दण्ड भी मनुष्य-योनि में ही मिलने से वह कर्म-खाता चुकता हो सकता है।

अब दण्ड के दूसरे प्रयोजन पर विचार कीजियेगा। यदि कोई मनुष्यात्मा बुरे कर्म करने के फलस्वरूप दण्ड भोगने के लिए किसी पशु-पक्ष्यादि योनि में पुनर्जन्म ले तो दूसरों के आगे कोई उदाहरण कायम करने (Exemplary punishment) का भी अभिप्राय सिद्ध नहीं होता क्योंकि किसी को क्या मालूम कि वह आत्मा पश्वादि योनि में गई और वहाँ उसे दण्ड मिला? अपराध-विद्या विशेषज्ञ स्वयं इस बात को मानते हैं कि यह अपराध का दण्ड मिलता देखकर लोग उससे नसीहत नहीं लेते बल्कि अपराध बढ़ता ही जाता है। इसकी अपेक्षा तो जब लोग

किसी मनुष्य को लूला-लंगडा, कोढ़ी, अपाहिज, अंधा, बहरा या अत्यन्त रोगी देखते हैं तभी वे बुरे कर्मों से बचने की प्रेरणा लेते हैं। यदि कोई व्यक्ति बुरा कर्म करता है तो लोग कहते भी हैं कि – "तू दुःखी होकर मरेगा"। मनुष्य स्वयं भी अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये कहता है – "यदि मैंने यह कर्म किया हो तो मेरी आंख फूट जाय, मेरे लिये ज़मीन फट जाये अथवा मैं रोगी होकर मरूं।" स्पष्ट है कि विवेक तथा अनुभव के आधार पर सभी मानते हैं कि मनुष्य-योनि में ही मनुष्य को अपने किये पाप-कर्मों का दण्ड मिलता है। इसी से ही लोग शिक्षा, इब्रत, नसीहत अथवा स्वयं को सुधारने की प्रेरणा भी लेते हैं। कोई मनुष्यात्मा पशु बना या न बना, इसका तो पता ही नहीं चल सकता तब उस से नसीहत लेने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। फिर यदि वह यहां कामी होने के परिणाम स्वरूप कुत्ता बना तो उससे दूसरे को क्या प्रेरणा मिल सकती है ? कुत्ता बनने से तो वह और भी अधिक पतित बन गया।

तीसरे दृष्टिकोण से विचार

तीसरा अभिप्राय तो यह होता है कि मनुष्य आगे के लिये बुरा कर्म करने से बच जाय, इसलिये उसे दण्ड (Deterrent Punishment) दिया जाता है। परन्तु विचार करने पर आप इसी निर्णय पर पहुंचेगे कि पशु-आदि योनियों में जाने से तो ऐसा भी नहीं होगा। मान लीजिये कि कोई मनुष्य चोरी रूप पाप करता है। अब यदि वह इसके दण्ड-भोग के लिये बिल्ली-योनि में पुनर्जन्म ले तो यह क्या दण्ड भोग हुआ ? बिल्ली तो स्वयं ही चोरी-चोरी, छिप-छिप कर दूध पी जाती है। इसकी बजाय यदि अगले जन्म में अथवा उसी जन्म में दण्ड के रूप में किसी दुर्घटना आदि के द्वारा उसके हाथ को कोई हानि पहुँचे या वह रोग के कारण घर में पड़ा रहे तो वह चोरी करने से रुक जायेगा। अत: अपराध की पुनरावृत्ति से रोकने वाला दण्ड भी मनुष्य-योनि में ही मिलना विवेक-युक्त मालूम होता है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि दण्ड-विधान या न्याय-सिद्धान्त के अनुसार भी मनुष्यात्माओं का दण्ड-भोग के लिये अन्य योनियों में गमन युक्ति-संगत मालूम नहीं होता। फिर, आप विचार कीजिये कि दण्ड देने का भाव तो यह होता है कि जिसे दण्ड मिले, वह उसे महसूस करे, उसे अपने अपराध की सज़ा माने। यह भी मनुष्य-योनि में ही दण्ड मिलने पर दण्ड सम्भव है। आपने धार्मिक स्वभावों के मनुष्यों को रोग, शोक, धन-हानि आदि-आदि की स्थिति में यह कहते सुना होगा — "अजी क्या पूछते हो, मन बड़ा दु:खी है अथवा रोग बड़ा कड़ा है ! क्या करें, हमारे भाग्य ऐसे हैं, हमारे कोई पिछले कर्म ही ऐसे हैं।" तो स्पष्ट है कि मनुष्य-योनि में ही इस बात का एहसास (Realisation) ख्याल हो सकता है कि यह मेरे अपने कर्मों का दण्ड है। पशु-पक्षियों में तो यह ज्ञान हो ही नहीं सकता, न उनमें कुछ ऐसा एहसास देखने में आता है।

क्या देवता, दैत्य, असुर कोई अलग योनियाँ हैं ?

यह बात विवेक के आधार पर भी स्पष्ट की जा सकती है कि मनुष्यात्मा स्वयं में किन्हीं मानवी-स्वभाव-परक अव्यक्त योग्यताओं (Human facutlties) के कारण पशु-पक्षी, कीट-पतंग इत्यादि योनियों में नहीं जाती परन्तु अज्ञानता के कारण उसके संस्कार, विचार या कर्म पशुओं से अधिक तुच्छ कोटि के हो सकते हैं। तब प्रश्न उठता है कि यह जो मान्यता प्रचलित है कि मनुष्यात्मा देव-योनि धारण करके स्वर्ग में या राक्षस योनि, पशु आदि योनियों में भ्रमण करती हैं, इसका अर्थ क्या है ? क्या देव-योनि कोई अलग योनि है या नहीं ?

गहराई से सोचने पर आप इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि संस्कार, विचार और कर्म के आधार पर मनुष्यात्मा की कम-से-कम तीन अवस्थायें हैं। सतयुग और त्रेतायुग में मनुष्यात्मायें सतोप्रधान संस्कारों वाली होने के कारण वस्तुत: देवात्मायें ही हैं। अत: मालूम रहे कि देव-योनि अलग योनि तो नहीं है परन्तु सतयुग में जबकि मनुष्यात्मा दिव्य-गुण सम्पन्न और सतोप्रधान होती है, उसके शरीर की प्रकृति यद्यपि मनुष्य-जैसी ही होती है तथापि वह शरीर काम-वासना के भोग द्वारा उत्पन्न न होकर ऊर्ध्व-रेता माता-पिता के ब्रह्मावर्चस, तेज अथवा आत्मबल से ही होता है जिसे योगज जन्म भी कहा जा सकता है। अत: देवताओं की अलग योनि मानना तो उचित नहीं है, उनका वर्ण तथा उनकी अवस्था (उर्ध्व-रेता और सतोप्रधान तथा पावन अवस्था) अलग मानना विवेक-सम्मत है।

फिर द्वापर-युग से मनुष्य का जन्म काम-विकार द्वारा होने की परिपाटी प्रचलित होती है। ऐसे जन्म को 'मैथुनी जन्म' भी कहा जाता है। मैथुन रूपी कर्म को अथवा काम विकार को यानी 'स्त्री सम्भोग' को कई लोग पशु-धर्म भी कहते हैं। अत: सतयुग में जो देवता थे, वे

पुण्यक्षीण होने के बाद, अथवा प्रारब्ध समाप्त होने के बाद द्वापर युग के प्रारम्भ से पशु-धर्म में प्रवृत्त हुए, अर्थात् वे काम विकार के वशीभूत हुए। द्वापर-युग के आरम्भ में तो काम-विकार आटे में नमक की तरह था। समयान्तर में वह प्रबल होता गया और आज कलियुग के अन्तिम चरण में तो मनुष्य बहुत ही पतित हो गये हैं। आज हम देखते हैं कि गाय, भैंस, बकरी आदि पशु तो फिर भी उतने पतित नहीं जितने कि मनुष्य पतित हैं। इस प्रकार, द्वापर युग में पतित होने के बाद, अर्थात् काम-विकार के वशीभूत होने के बाद मनुष्यात्मायें पशु-धर्म (काम-विकार) वाली तो हुई परन्तु उन्होंने पशु-योनि में जन्म नहीं लिया। हमारे इस कथन का भाव यह है कि वह पशु-बुद्धि हो गई है, अर्थात् उसका आहार-व्यवहार आदि पशुओं-जैसा निकृष्ट हो गया है और, जैसे ही आज मनुष्य भी ज्ञान-शून्य, धर्म-भावना से वंचित तथा योग से विमुख है। इस दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि मनुष्यात्मा उत्तरोत्तर पशु-तुल्य अथवा पशु-बुद्धि या पशु-धर्म वाली होती गई है। किसी कवि ने कहा भी है कि 'येषाम् न विद्या न तपो न दानम् ... ते मृत्य लोके भुवि भार-भूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्यरन्ति', अर्थात् जिनमें विद्या, तप या दान वृत्ति इत्यादि नहीं है, वे मनुष्य के रूप में होने पर भी मानो पशु ही हैं।

दूसरी व्याख्या

दूसरी व्याख्या यह हो सकती है कि सतयुग और त्रेतायुग में आत्मा के जितने शारीरिक जन्म थे, वे चूंकि योगज थे और उस युग में चूंकि शरीर तथा स्वभाव दैवी थे इसलिए वह जन्म दैवी थे; फिर द्वापर युग में जब विकार इतने उग्र न थे और मनुष्य कुछ भक्ति, हठ, योग, संन्यास, व्रत, तीर्थ-यात्रा, यज्ञ, शास्त्र-पाठ आदि करता था तब उसका जन्म या जीवन मानवी था। परन्तु धीरे-धीरे उसमें कव्वे-जैसी चंचलता, बगुले-जैसा कपट, कबूतर-जैसी अंध-श्रद्धा, तोते-जैसी रटने की आदत, साँप-जैसा दूसरों को डंक मारने (दुःखी करने) का स्वभाव, शेर-जैसी

हिंसा, कुत्ते जैसी काम-वृत्ति, चूहे जैसी दूसरों की बात को कतर-व्योंत करने की प्रवृत्ति, जल बिना मछली की तरह तृष्णाओं के पीछे तड़पना आदि-आदि विशेषताएं आती गईं। उसमें देवताओं के दिव्य गुण तो प्राय: लुप्त हो गये परन्तु लाखों पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि येनियों में से किसी-न-किसी योनि वाले जीवों-का-जैसा संस्कार आ गया। हो सकता है कि इस बात को किसी ने यों कह दिया हो कि मनुष्य आत्मा देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि योनियों में जन्म लेती है। एक मानवी जीवन में मनुष्य कई प्रकार का मानवी स्वभाव धारण करता है, अत: हो सकता है कि इस बात को उन्होंने यों कह दिया हो कि आत्मा ८४ लाख मनुष्य-योनियां धारण करती है। फिर मनुष्य कभी तो बन्दर की तरह पांचों विकारों के वशीभूत हो जाता है और कभी सत्संग के प्रभाव से कछुए की तरह कर्मेन्द्रियां समेट लेता है और कभी दिव्य विवेक प्राप्त होने पर हंस की तरह झूठ से अलग रहता है तथा सत्य को ग्रहण करता है; अत: हो सकता है कि शायद इस दृष्टि-कोण से किसी ने कह दिया हो कि मनुष्य तो लाखों पशु-योनियां लेता है। परन्तु यह बात तो स्पष्ट है कि मनुष्यात्मा पशु-तन या पक्षियों-जैसा शरीर या कीड़ों-जैसी काया नहीं लेती।

सम्भव है कि द्वापर युग और कलियुग में जो मनुष्यात्मा अत्यन्त दूषित मन, तथा वचन और कर्म वाली होती है, वह शरीर के बाद कुछ काल तक, जब तक कि उसे दूसरा मानवी तन मिले, वह भूत की तरह भी विचरती होगी। परन्तु भूतों को कोई अलग योनि अथवा कोई अलग जन्म मानना गोया अविवेकपूर्ण मत गढ़ने के तुल्य होगा। वास्तव में भूत का अर्थ है —'था' (was or had been) 'भूत' का अर्थ है जो गुज़र चुका है अथवा जो बीत चुका है। स्पष्ट है कि बीते हुये काल में जो मनुष्य था और जिसने अभी तक कहीं दूसरा मानव तन नहीं लिया, उसकी केवल मध्यकालीन अवस्था का नाम 'भूत' है। भूत कोई अलग योनि या जन्म

नहीं है ।

असुरों की कोई अलग योनि नहीं है

इसी प्रकार, 'असुरों' की भी कोई अलग योनि नहीं है बल्कि 'सुर' अर्थात देवताओं के विपरीत (अ-सुर) लक्षणों वाले मनुष्य ही वास्तव में असुर हैं । श्रीमद् भगवद् गीता में आसुरी लक्षणों का स्पष्ट वर्णन मिलता है । जो लोग तमोगुणी हैं वास्तव में वे सभी असुर हैं । परन्तु आज स्वयं को 'असुर' मानकर ज्ञान-योग द्वारा 'सुर'(देवता) बनने का यत्न करने की बजाय अज्ञानी लोग मानते हैं कि असुर तो पृथ्वी से नीचे शायद किसी नरक में रहते हैं और उनकी शायद कोई अलग ही योनियां हैं ! परन्तु वास्तव में ऐसा मानना भूल करना है । आश्चर्य की बात देखिये कि जबकि गीता में आसुरी और दैवी लक्षणों का स्पष्टीकरण दिया हुआ है, तब भी आज कई गीता-प्रेमी लोग पशु-योनियों को ही आसुरी योनियां मानने की भूल करते हैं (गीता तत्व विवेचनी अ. १६, श्ल. १९ की व्याख्या) । ऐसे मानने की भूल करना वास्तव में एक अचम्भे की बात है । इसी तरह दैत्यों, दानवों या राक्षसों की भी कोई अलग योनियां नहीं हैं बल्कि मानव ही जब अत्याचार और असत्य के पथ पर चलता है तो 'दानव' हो जाता है और वही मनुष्य जब मांस-मदिरा की आदत तथा विषय-वासना में खो जाता है तो 'राक्षस' कहलाता है । इन सभी तथ्यों को जानने के बाद मानना होगा कि मनुष्यात्मा ८४ लाख योनियों में भ्रमण नहीं करती, न ही देवताओं, दैत्यों या राक्षसों की कोई अलग योनियां हैं बल्कि मनुष्यात्मा में ही संस्कारों में परिवर्तन और प्रकारान्तर होता है ।

अमृत द्वारा मृत्यु पर विजय; अमर पद की प्राप्ति

चिरकाल से मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करते आये हैं। लोगों का कहना है कि साइन्स (Science, विज्ञान) की खोज भी मृत्यु को जीतने के विषय को लेकर शुरू हुई थी। मनुष्य ने बहुत पहले ही ऐसा रसायन (औषधि, Alchemy) बनाने की आवश्यकता समझी थी जिससे कि वह मौत पर काबू पा सके। उस रसायन को बना सकने से पहले ही मनुष्य ने उसे 'अमृत' नाम भी दे दिया। परन्तु वह रसायन आज तक मनुष्य के हाथ नहीं लगा। ऐसा रसायन भला सम्भव भी कैसे था? प्रकृति तो स्वयं भी विनाशी है, उससे बना हुआ कोई भी रसायन मनुष्य की मरण धर्मा प्रकृति (देह) को भला अमर अथवा अविनाशी कैसे बना सकता?

अत: आज भी अनेकानेक वैद्यों की उपस्थिति में अथवा औषधियों के होते हुए मनुष्य मृत्यु-पीड़ा से प्राण छोड़ता है या तो अचानक ही उसका हार्ट फेल हो जाता है, उसके हृदय की गति रुक जाती है। साइन्स ने अनगिनत आविष्कार किये हैं, परन्तु उन आविष्कारों से मृत्यु की नौबत आ जाती है। साइन्स ने मृत्यु पर विजय का तो कोई उपाय निकाला ही नहीं, बल्कि उससे तो सृष्टि के विनाश अथवा 'महामृत्यु' के साधन ही अणुबमों, उद्‌जन बमों इत्यादि के रूप में मनुष्य को मिले हैं।

यहां राम का राज्य नहीं, यम का राज्य है

मृत्यु से बचने के लिये मनुष्य साइन्स के आधार के अतिरिक्त जप, तप, यज्ञ, कर्मकाण्ड इत्यादि का भी आधार लेते हैं, परन्तु फिर भी मृत्यु तो आती ही है। यम की फांसी हरेक के गले में पड़ी हुई है। सब को पता है कि एक दिन जाना है। किसी भी मनुष्य के चेहरे पर पूर्ण और सदा-स्थाई हर्ष नहीं है क्योंकि कोई माने या न माने, सभी पर मृत्यु का

साया तो पड़ा ही हुआ है । यहां पर छोटे-बड़े का अन्तर नहीं है । बाप के होते हुए छोटे बच्चे को काल खा जाता है । अकाल मृत्यु आ जाती है और भावी में कोई भी मनुष्य हस्तक्षेप नहीं कर सकता । किसी मनुष्य का संसार में कितना ही मान रहा हो, उसे एक दिन काल के मुंह में जाना ही पड़ता है । यहां तो किसी का भी राज्य नहीं, यम का राज्य है । यहां राम का राज्य नहीं बल्कि "राम नाम सत्य है" की ध्वनि कहीं न कहीं लगी हुई है । 'जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद' — इस कहावत के अनुसार इस लोक को 'मृत्यु लोक' भी कहते हैं, क्योंकि यहां के सभी जीवों को एक-न-एक दिन मरना है । यहां तो जन्म-मरण के दु:ख के 'दो पाटन के बीच में साबित रहा न कोय' वाली बात हो रही है । मृत्यु का निश्चय सभी को है । अत: समझदार व्यक्ति का विचार चलता है कि — यम की फांसी से कैसे छूटें ।

मृत्यु की पीड़ा

मृत्यु की पीड़ा से छूटने का पुरुषार्थ ठीक रीति से तभी हो सकता है जब ठीक रीति से यह जान लें कि मृत्यु या पीड़ा का कारण क्या है ? आप देखते हैं कि इस संसार में जब कोई मनुष्य अन्य किसी के प्रति घातक हिंसा का व्यवहार करता है अथवा अपने देशवासियों के प्रति द्रोह अथवा अहित की भावना से उन्हें दु:ख पहुंचाता है तो सरकार कानून के अनुसार उसे मौत का दण्ड देती है । इससे स्पष्ट है कि मृत्यु अपने खोटे कर्मों का फल है । इसी प्रकार, रोग, दुर्घटना इत्यादि से मनुष्य की जो मृत्यु होती है, यह भी ईश्वरीय सरकार के नियमों के विरुद्ध आचरण का फल है । यदि मनुष्य इस लोक में श्रेष्ठ कर्म करे और काम, क्रोध आदि विकारों के वश होकर विकर्म न करे तो उसे दण्ड नहीं भोगना पड़ेगा । हम अपने सामने अनेक ऐसे उदाहरण देखते हैं कि यह विकार ही मनुष्य को मृत्यु के मुख में ले जाते हैं । हाथी, काम विकार के वश होकर कागज़ की हथनी के पीछे भागता है और खड्डे में जा गिरता है और इस प्रकार,

सदा के लिये कैदी बना लिया जाता है । भ्रमर फूल की सुगन्ध पर मोहित होकर उसका रस चूसता रहता है, पर कोमल पंखुड़ियों में पड़ा रहता है और जब रात हो जाती है और पंखुड़ियां बन्द हो जाती हैं तो वह उसके अन्दर मर जाता है । पतंग रोशनी पर मुग्ध होकर न आव देखता है न ताव, उस पर जल कर मर जाता है । अत: स्पष्ट है कि कर्मोन्द्रियों के वशीभूत होकर विषयों के पीछे भिखारी के समान भागने वाला मनुष्य भी मौत के मुंह में चला जाता है । अपनी उद्दण्डता का परिणाम वह मौत के रूप में पाता है ।

देश की सरकार तो अपराधी को मृत्यु से बड़ा दण्ड नहीं दे सकती परन्तु विकारों के कारण दु:ख देने के रूप में अपराध करने वाले मनुष्य को मृत्यु का दण्ड तो मिलता ही है, लेकिन उसके बाद भी उसे गर्भ-जेल भोगनी पड़ती है । इतने ही से उसका छुटकारा नहीं होता बल्कि अगले जन्मों में भी उसे विकर्मों का फल दु:ख के रूप में मिलता है और अन्त में, धर्मराजपुरी में दण्ड पाता है । अत: किसी प्रकार मृत्यु को जीतने से मनुष्य न केवल मृत्यु के समय के कष्ट से बच जाता है बल्कि बाद में गर्भ-जेल में मिलने वाले दु:ख से भी छूट जाता है अर्थात् मुक्ति तथा जीवन-मुक्ति पा लेता है ।

'जीवन मुक्ति' का अर्थ क्या है ?

मुक्ति की अवस्था में तो मनुष्य शरीर से ही मुक्त होता है और निष्क्रिय (Inactive) होता है, परन्तु जीवन-मुक्ति की अवस्था में वह देह लेता भी है और देह का कलेवर त्यागता भी है परन्तु इन दोनों में उसे रंचक भी दु:ख नहीं होता । जन्म और देह-त्याग दोनों दु:ख-रहित और सुख-सहित होते हैं ।

जिस लोक में अभी हम हैं, इसे 'मृत्यु लोक' कहते हैं । जीवनमुक्ति का अधिकार होने पर मनुष्य जिस लोक में जाता है, उसे 'अमर लोक' अथवा 'देव लोक' कहते हैं । देवता दु:ख देने वाले जन्म-मरण में बन्धे

हुये नहीं होते जबकि श्री नारायण को याद करने वालों के बारे में भी प्रसिद्ध है कि — यम के पंजे से छूट जाते हैं तो श्री नारायण के राज्य में किसी को यमदूतों की पीड़ा मिले, यह भला कैसे हो सकता ? अत: देवता जीवन-मुक्त होते हैं; उनकी अवस्था को 'अमर पद' कहा जाता है । देह तो देवता भी त्यागते और लेते हैं परन्तु उन्हें देह लेने तथा त्यागने के समय दु:ख नहीं होता । इसीलिये उन्हें 'जीवनमुक्त' माना जाता है ।

अत: मृत्यु को जीतने का अर्थ मुक्ति और जीवनमुक्ति को प्राप्त करना, मनुष्य से देवता बनना, मृत्यु लोक से अमर लोक में जाना अथवा नरक से स्वर्ग में जाना है । प्रसिद्ध है कि स्वर्ग अथवा बैकुण्ठ में आदि, मध्य और अन्त तीनों कालों में दु:ख नहीं होता ।

परमात्मा द्वारा कौनसा अमृत मिलता है ?

यह बात तो प्रसिद्ध है कि अमृत पीने से ही मनुष्य अमर हो जाता है । परन्तु लोग यह नहीं जानते कि वह अमृत कौनसा है और उस अमृत को देने वाला वैद्य कौन है ? आज वैद्यों ने अमृतधारा बना रखी है, पुजारी लोग देवताओं की मूर्तियों के चरणों पर जल को उछालकर चरणामृत भी पिलाते हैं । परन्तु समझने की बात यह है कि जन्म-मरण में आने वाले मनुष्य ने प्रकृति के तत्वों से जो यह अमृत बनाये हैं, उनसे मनुष्य अमर कैसे हो सकता है ? सच्चा अमृत तो 'अमरनाथ' (शिव) पिता परमात्मा का गीता-ज्ञान ही है ।

गीता के भगवान् के महावाक्य हैं कि — 'इस ज्ञान द्वारा महामृत्यु के भय से बच जायेगा और स्वर्ग का स्वराज्य पायेगा और श्री (देवपद) तथा 'विजय' (मृत्यु पर) प्राप्त कर लेगा अर्थात् अमर (देवता) पद पा लेगा । जब मनुष्य मरने लगता है तब उसे गीता-ज्ञान सुनाते हैं, अन्य सब दवाइयां देना छोड़ देते हैं । वे समझते हैं कि गीता सुनने से मनुष्य स्वर्ग में जायेगा । परन्तु उस समय मनुष्य गीता-ज्ञान धारण थोड़े ही कर सकता है ?

निश्चय ही जो मनुष्य गीता-ज्ञान को जीवन में धारण करके जीवन को पवित्र बनाता है, उस मनुष्य के लिये मृत्यु एक पुल है जिस द्वारा वह इस मृत्युलोक को पार करके अमरलोक में चला जाता है अथवा स्वर्गवासी होता है । परन्तु जन्म-मरण में आने वाले मनुष्य जो गीता-ज्ञान सुनाते हैं, उनसे यह आशा पूरी नहीं हो सकती बल्कि परमात्मा स्वयं अवतरित होकर जो गीता-ज्ञान देते हैं, वही अमृत है, और उसी से मनुष्य स्वर्ग में अमर पद पाता है । इसलिये ही कहते हैं कि 'जिसका काम उसी को साजे और करे तो डींगा बाजे ।'

मृत्यु को कैसे जीतें ?

परपिता परमात्मा शिव ज्ञानामृत पिलाकर और दिव्य-गुणों की तथा ब्रह्मचर्य व्रत की शिक्षा देकर मनुष्यों को तीन प्रकार से मृत्यु पर विजय प्राप्त कराते हैं ।

एक तो वह ज्ञानामृत द्वारा मनुष्य को इतना योग्य और गुणवान बनाते हैं कि शरीर छोड़ने के बाद उसका नाम और यंश बना ही रहता है । परमात्मा के ज्ञान के आधार से मनुष्य शरीर और कर्मेन्द्रियों के द्वारा ऐसे कर्म करता है कि उसका गायन होता है । प्रजापिता ब्रह्मा और जगदम्बा सरस्वती का अथवा श्रीराम और श्रीकृष्ण का उदाहरण हमारे सामने है । आज दिन तक उनका कितना गायन होता है ! उनकी कितनी यादगारें बनी हुई हैं ! ! ईश्वरीय ज्ञानामृत को पीये बिना और श्रेष्ठ कर्म किये बिना जो मनुष्य शरीर छोड़ जाते हैं, वे गाये-पूजे नहीं जाते । अधिक से अधिक वर्ष में एक-आधी बार उनके अपने ही पुत्र, पौत्र उन्हें याद कर लेते हैं बस ! एक-दो पीढ़ियों के बाद तो उन्हें इतना भी कोई याद नहीं करता, गायन और पूजन की तो बात छोड़िये । परन्तु श्रीराम और श्रीकृष्ण इत्यादि को तो लोग प्रात: उठते ही नित्य प्रति याद करते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनकी याद होती चली आती है । अत: मरने पर भी 'श्रीराम नाम सत्य है', 'श्री कृष्ण नाम सत्य है' इन्हीं नामों को 'सत्' बोला जाता है । उनके अपने शरीर छोड़ने के बाद तो उनका नाम चला आ रहा है, परन्तु ध्यान दीजिये कि दूसरों के मरने पर भी श्रीराम और श्रीकृष्ण ही के नाम को सत् बोला जाता है ।

उनके नाम तो क्या उनके शरीरों को भी यादगारें मन्दिरों में बनाकर उनके शरीरों को भी पूजा जाता है क्योंकि उन शरीरों द्वारा उन्होंने पवित्र जीवन व्यतीत किया होता है अथवा श्रेष्ठ कर्म किये होते हैं । उनके गुणों का भी कविताओं के रूप में गायन तथा कीर्तन होता है । उनके जन्म-स्थान

इत्यादि को भी लोग तीर्थ मानते हैं। उनके कर्त्तव्यों को चरित्र मानकर लोग उनके भी चित्र बनाते हैं और ग्रन्थों के रूप में उनकी कथा करते हैं। शरीर छोड़ने के बाद भी हर वर्ष उनकी जयन्ती मनाते हैं। सरकार भी उनके मन्दिरों को नहीं गिरा सकती है। सारे देश की दृष्टि उन मन्दिरों पर रहती है और यदि कोई उनको गिराने की कोशिश भी करे तो हज़ारों नर-नारी उनकी रक्षा के लिये अपनी जान तक भी देने के लिये तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार उनका नाम-निशान मिटाने वाली मृत्यु पर वे विजय प्राप्त कर लेते हैं। भले ही उनका स्थूल शरीर यहीं रहता परन्तु उनकी याद मनुष्यों के हृदय में जीती रहती है।

दूसरे, परमपिता परमात्मा द्वारा ज्ञानामृत पीने, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने तथा योगाभ्यास करने से मनुष्य को शरीर छोड़ते समय दुःख या पश्चात्ताप नहीं होता क्योंकि एक तो उसने विकर्म नहीं किये होते कि पश्चात्ताप हो और, दूसरे, वह शरीर भी ऐसे छोड़ देता है जैसे मनुष्य सहज ही अपने वस्त्र उतार देता है अथवा सर्प अपनी पुरानी खाल उतार कर नई धारण कर लेता है। ज्ञान अमृत का सेवन करने वाला तथा योग का अभ्यास करने वाला मनुष्य ऐसा अनुभव करता है जैसे कि वह ईश्वर की गोद में जा रहा हो। जैसे कोई मुसाफिर सहज ही सराय को छोड़कर घर में विश्रामी होता है, वैसे ही वह संसार रूपी सराय को छोड़कर परमधाम की मंजिल पर पहुँच जाता है अथवा, जैसे किसी मनुष्य की तरक्की होने पर उसका ट्रांसफर (Transfer; स्थानान्तरीकरण) हो जाता है, वैसे ही स्वयं को परमपिता परमात्मा के धाम में जाता देखकर अथवा स्वर्ग में देवपद के रूप में तरक्की पाते देखकर, देह छोड़ते समय उसे आनन्द ही होता है। अन्य लोग मौत से डरते हैं क्योंकि उन्होंने विकर्म किये होते हैं।

तीसरे, परमपिता परमात्मा के ज्ञान से जो गति (मुक्ति) और सद्गति (जीवन-मुक्ति) प्राप्त होती है, उनमें तो मृत्यु का भय, कष्ट इत्यादि होता

ही नहीं है । यही कारण है कि लोग मुक्ति और जीवनमुक्ति की प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करना चाहते हैं । अत: मनुष्य को चाहिये कि वह अब ज्ञानामृत प्राप्त करें, ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करें तथा योग के अभ्यासी बनें ताकि अमर पद की प्राप्ति हो सके ।

मृत्यु से कौन छुड़ा सकता है ?

मृत्यु से वह छुड़ा सकता है जो मृत्यु से भी बलवान मृत्युन्जय हो । काल से बचा वही सकता है जो कालों का भी काल हो । कर्मों के दण्ड और बन्धन से मुक्त वही कर सकता है जो कर्मों की गहन गति को जानता हो और स्वयं इनके बन्धनों से सदा मुक्त हो । मनुष्य से देवता बना वही सकता है जो देवों का भी देव हो । अत: यह एक बात अच्छी तरह से गांठ बाँध लेनी चाहिये कि संसार में अन्यान्य देन अथवा सहायता भले ही कोई मनुष्य दे सकता हो, मुक्ति और जीवन-मुक्ति का दाता एक परमपिता परमात्मा ही है, इसी कारण, एक परमपिता परमात्मा ही को 'मृत्युन्जय' अथवा 'अमरनाथ' भी कहा जाता है । अन्य किसी को भी यह उपाधियाँ नहीं दी जा सकतीं । भक्त-जन परमपिता परमात्मा ही से कहते हैं — हे प्राणदाता, हे जहांपनाह, हे शरणदाता हमारी रक्षा करो ! 'सुख घनेरे देने वाला पिता' भी केवल परमात्मा ही को कहा जाता है । अत: काल कंटक दूर करने वाले पिता केवल परमात्मा (शिव) ही हैं ।

मौत के बाद हरेक आदमी के साथ जाता है – एक बिस्तर और एक बोरी

सिकन्दर जब मरा था तब उसके हाथ कफन से बाहर निकाल कर खाली दिखाये गये थे क्योंकि लोग मानते हैं कि मौत के बाद मनुष्य खाली हाथ जाता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि हरेक मनुष्य की मौत के बाद उसके साथ एक बोरी और एक बिस्तर जाता है। आप सोचते होंगे कि कभी हमने मरे मनुष्य के साथ उसका बिस्तर और बोरी जाते देखे तो नहीं हैं।

परन्तु आप जानते हैं कि इस संसार को एक मुसाफिर खाना कहा जाता है और जब कोई मनुष्य मर जाता है तो उसके बारे में लोग कहते हैं कि – वह चल बसा (He has departed)। तो जैसे हम यहां जब रेल-यात्रा करते हैं, एक शहर से दूसरे नगर को दूर कहीं जाते हैं तो अपने साथ एक बोरी सामान की और एक बिस्तर भी ले जाते हैं, वैसे ही यह मनुष्यात्मा रूपी मुसाफिर जब देह-गेह छोड़ कर रवाना होता है, तब वह भी तो अपने साथ एक बोरी और एक बिस्तर ले जाता होगा?

मरने के बाद कौन-सी बोरी और कौन-सा बिस्तर मनुष्य के साथ जाता है?

मरने के बाद मनुष्य बोरी में तो ले जाता है – अपने मन की वृत्तियां अथवा बुद्धि का विस्तार। जैसे मनुष्य के बिस्तर में तकिया होता है जिस पर कि वह सिर को टिकाता है, वैसे ही मनुष्य-आत्मा अगले जन्म के लिये तकिया-ए-कलाम साथ ले जाता है अर्थात् एक बौद्धिक रोझान, मन की टेर या एक मति और स्वभाव का तकिया बना कर ले जाता है जिस पर ही अगले जन्म में उसका वचन तथा व्यवहार, सिरहाने पर सिर की तरह टिका होता है। जैसे किसी मुसाफिर का तकिया स्वच्छ सुन्दर और सुकोमल होता है और किसी का संड़ाद वाला तथा मैला-कुचैला, वैसे

ही किसी आत्मा का तकिया-ए-कलाम, अर्थात् वचन और व्यवहार की टेर या टेक, कोमल, पवित्र तथा सुन्दर होती है तो किसी का मलेच्छों-जैसा। हरेक की बुद्धि का कोई तकिया, कोई तकवा (आधार) कोई ठिकाना होता ज़रूर है।

फिर जैसे मुसाफिर का बिछौना — नरम गदेला, सख्त चटाई या मामूली टाट अथवा अंगोछा होता ज़रूर है, जिस पर कि वह लेटता अथवा बैठता है, वैसे ही मौत के बाद मनुष्यात्मा कर्म रूपी ताना-बाना या पूर्वाभ्यास रूपी टिकाव साथ ले जाता है जिस पर कि उसका जीवन टिका होता है और जिस पर ही उसके भोग्य-भाग्य का बैठान होता है।

अब बिस्तर गोल करो, परमधाम जाना है

आज लोग कहते हैं कि यह संसार मुसाफ़िरखाना है, हमें यहां से चले जाना है। कहां चले जाना है और कब जाना है, यह तो उन्हें कुछ खबर ही नहीं है। जिसे जाना होता है वह तो जाने की तैयारी में लग जाता है। वह तो अपना बोरी-बिस्तर बान्ध लेता है। वह चादर-सिरहाना समेट लेता है। परन्तु आज तो मनुष्य ऐसे दिखता है जैसे कि उसे जाना ही न हो। वह तो केवल कहता मात्र है कि मुझे इस मुसाफिर खाने से जाना है। वास्तव में तो उसने बिस्तर-बोरी समेटने का संकल्प ही नहीं किया।

परन्तु अब तो संसार की परिस्थितियाँ हरी झण्डी दिखा रही हैं कि अब परमधाम जाने का समय आ पहुँचा है। अब इस संसार में रक्खा ही क्या है ? अब तो यह सृष्टि रूपी मुसाफ़िरखाना ही नष्ट होने वाला है। जैसे बहुत बड़ी पहाड़ी को तोड़ने के लिये हथौड़े इस्तेमाल करने की बजाय उसे बारूद से उड़ा दिया जाता है, वैसे ही ये ऐटम और हाइड्रोजन बम इस विराट सृष्टि के महाविध्वंस के लिये बने हैं क्योंकि अब इस जर्जरीभूत सृष्टि का विनाश करके यहां सतयुगी सुखधाम बनना है। अत: अब जाना तो सबको है ही। 'राम गयो, रावण गयो, जाको बहु परिवार।'

इसलिये, अब तो हरेक को अपना बोरी-बिस्तर सम्भालना चाहिये । अब तो बुद्धि-योग चारों तरफ से समेट कर बांध लेना चाहिये । और, बोरी में अच्छे ही संस्कार ले जाने चाहियें । वरना, जैसे कोई व्यक्ति निषिद्ध वस्तुयें (Contraband or Prohibited Goods) अफीम, शराब आदि ले जाता है तो रास्ते में चैकिंग होने पर उसे दण्ड मिलता है, वैसे ही काम-क्रोधदि विकारों के संस्कार जो व्यक्ति ले जायेगा उसे धर्मराजपुरी रूपी चैक पोस्ट (Check Post) में दण्ड भोगना पड़ेगा । यहां भी काल उसकी खाल खींचेगा, वहां भी उसे यम से भय होगा — इसका क्या फायदा ? अत: अब यही समय है कि मनुष्य को अच्छे संस्कारों की बोरी और योग का बिस्तर बाँध लेना चाहिये । यही उसका सुख देने वाला समान उसे रास्ते में भी काम आयेगा और आगे भी ।

मौत से पहले क्या ?

जब मनुष्य मृत्यु-शय्या पर पड़ा रहता है तो उसके सम्बन्धी उसके मुख में गंगाजल डालते रहते हैं और उसे गीता पढ़कर सुनाते हैं । उनका यह विश्वास है कि इस प्रकार मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होता है । परन्तु सोचने की बात है कि तब तो उस मनुष्य की इन्द्रियां शिथिल हो रही हैं और विचार शक्ति मन्द पड़ रही होती है । अत: उस समय उसे गीता पढ़कर सुनाने, उसके कानों में ओम् ....ओम् कहने या उसे शिव अथवा श्रीकृष्ण या श्रीनारायण का चित्र दिखाने से क्या होगा ? उस समय उसके विकारी संस्कार तो बदल नहीं सकेंगे, न ही उसकी स्मृति परमपिता परमात्मा में स्थित हो सकेगी क्योंकि उसको जैसा अभ्यास पड़ा हुआ है, वैसे ही वह चंचल रहेगी । अत: मनुष्य को मृत्यु काल से पहले ही, जब वह अच्छी हालत में होता है, परमपिता परमात्मा का तथा आत्मा का स्पष्ट परिचय प्राप्त करके, परमात्मा से योग-युक्त होने का सहज अभ्यास करना चाहिये । उसे यह भी जानना चाहिये कि वास्तव में इस स्थूल गंगा-जल से आत्मा पावन नहीं होती बल्कि कल्प के अन्त में परमपिता परमात्मा शिव अवतरित हो कर प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा जिन माताओं को ईश्वरीय ज्ञान और राजयोग की शिक्षा देते हैं, वे ही ज्ञान-गंगायें हैं, उन द्वारा ज्ञान लेना ही पतित से पावन बनने का साधन करना है । उस ज्ञान के आधार पर परमपिता परमात्मा शिव की स्मृति में स्थित होने का नित्य-प्रति अभ्यास करने तथा नर से श्री नारायण बनने का लक्ष्य सदैव अपने सामने रख कर दिव्य गुण धारण करने से ही मनुष्य को मुक्ति की तथा स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि जीवन-काल में पवित्र बनने, दिव्य गुण धारण करने तथा योगाभ्यास करने से ही मनुष्य की, अन्त काल में, वृत्ति अथवा मति ऐसी होती है कि वह इन लोकों को प्राप्त हो सकता है ।

इसी प्रकार, आप देखते हैं कि जब कोई मनुष्य मर जाता है तो उसके

लिये उसके सम्बन्धी दीपक भी जगाते हैं ताकि उस की आत्मा भटक न जाय। परन्तु क्या आत्मा को स्वर्ग या परलोक की राह दिखाने के लिये यह मिट्टी का दीपक काम दे सकता है ? नहीं, नहीं, इसके लिये तो जीवन-काल में स्वयं आत्मा रूपी दीपक को ज्ञान-योग के साधन से जगाना ज़रूरी है। आज जो लोग हरिद्वार जाते हैं और उस नाव में एक दीपक रख कर उसे गंगा में प्रवाहित करते हैं। जिसकी नाव का दीपक कुछ ही मिनट में बुझा दिखाई देता है, उसके बारे में दर्शक कहते हैं कि यह स्वर्ग नहीं जायेगा और जिसकी नाव तैरती हुई जाती दिखाई देती है और दीपक जगा हुआ दिखाई देता है, उसके बारे में वे कहते हैं कि — यह सीधा स्वर्ग जायेगा। अब इसके पीछे भी रहस्य है। यदि कोई अपने जीवन रूपी नाव को इस संसार में दिव्य गुण रूपी पुष्पों से सजाता है और आत्मा रूपी दीपक ऐसा जगाता है कि वह प्रलोभनों तथा संकटों रूपी वायु से नहीं बुझता तो वह मनुष्य निश्चय ही तर कर स्वर्ग जाता है, वरना जिसका आत्मा रूपी दीपक बुझ जाता है, उसका जीवन रूपी बेड़ा सचमुच डूब जाता है, वह नरक-गामी होता है।

फिर आप यह भी देखते होंगे कि जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो उसके संगी-साथी उसके शव को जब मरघट ले जा रहे होते हैं और मरघट के निकट पहुंचने पर वे अरथी की दिशा बदल देते हैं, वे उसके पांवों को नगर की ओर तथा सिर को श्मशान की ओर कर लेते हैं। वास्तव में तो मृत्यु से पूर्व ही 'राम नाम संग है' अथवा 'शिव नाम सत्य है' याद रखना चाहिये, तब तो सभी मनुष्य तन, धन और विकारों के धन्धों में लगे रहते हैं और जब प्राणी चल बसता है, तब तो वह सुन भी नहीं सकता। इसी प्रकार, अब मनुष्य को चाहिये कि जीते-जी ही पैर नगर की ओर कर ले और मुँह श्मशान की ओर कर ले अर्थात् जीते-जी मोह-ममता को त्याग कर अनासक्त वृत्ति से रहे और ध्यान दे। परन्तु आश्चर्य यह है कि मनुष्य दूसरों को मरते देखते हुये भी बार-बार अपनी

मृत्यु के बारे में भूल जाता है और अपनी राह से भटक कर विषय-विकारों में लगा रहता है । राम नाम सत् है, आदि घोष का जो अर्थ है, गीता-ज्ञान का जो अध्ययन है, ज्ञान-गंगा रूप अमृत का जो पान है, आत्मा रूप दीपक जगाने तथा नगर की ओर पांव करने की जो युक्तियां हैं, वह वास्तव में मौत से पहले ही प्रयोग में आनी चाहिएं, परन्तु संसार ही यह कैसी उल्टी चाल है कि उन्हें मौत के बाद में ही प्रयोग किया जाता है ।

ज्ञान से खूब श्रृंगार कर लो

ज्ञान से खूब श्रृंगार कर लो, अब तुमको वैकुण्ठ में जाना है ।
बदलो अपने वस्त्र पुराने, अब आया है नया ज़माना ।
चिथड़ों में ही पड़े-पड़े क्या, चल दोगे दरबार शाहाना ॥
काम शत्रु को बदलो प्रेम में, आधे कल्प का वैर भुलाना ।
क्रोध को बदलो दिव्य तेज में, अटल, अखण्ड स्वराज्य बनाना ॥
लोभ तुरन्त ही बदल जायेगा; दैवी गुण की करो धारणा ।
मोह-बन्धन तो टूट जायेगा, शिव पिता का नाता माना ॥
अहंकार की माया भागे, जो स्वरूप में हो टिक जाना ।
ज्ञान से खूब श्रृंगार कर लो, अब तुमको वैकुण्ठ जाना ॥

फिर करोगे कब ?

मनुष्य और दूसरे प्राणियों में एक अन्तर यह भी है कि मनुष्य में बुद्धि अधिक है । बुद्धि द्वारा ही मनुष्य ने संसार में बड़े-बड़े आविष्कार किये हैं, खान-पान और रहन-सहन के तरीकों में प्रगति की है और प्रकृति के तत्वों को वश में करने के लिए यत्न किये हैं । बुद्धि-बल के आधार पर मनुष्य न केवल अन्य जीव-प्राणियों पर राज्य करता है बल्कि कई ऐसे भी तो मनुष्य हैं जो कि लाखों-करोड़ों मनुष्यों पर राज्य करते हैं और वे जन-समूह के विचारों को मोड़ कर संसार में बड़ी-बड़ी क्रान्तियां लाते हैं । देखा जाय तो मनुष्य के सुख-दुःख का सम्बन्ध भी उसकी बुद्धि के साथ है क्योंकि सुख या दुःख रूपी प्रारब्ध भी मनुष्य को अपने कर्मों के आधार पर मिलती है । कर्म करने से पहले मनुष्य के मन में संकल्प उठता है और संकल्प अथवा मन को कन्ट्रोल करने वाली या मति देने वाली तो बुद्धि एक बहुत ही महत्वपूर्ण सत्ता है । यह एक सीढ़ी द्वारा वह नीचे के पतन के गर्त में भी उतर सकता है — विनाश की खाई में गिर सकता है । इसलिये बुद्धि को ठीक रखना बहुत ज़रूरी है । परन्तु आज हम देखते हैं कि मानव उच्च विद्वान, वैज्ञानिक अथवा कलाकार तो बन गया । परन्तु सदाचार और सद्भावना की दृष्टि से तो वह पीछे ही हटा है । मनुष्य अधिक तर्कशील और विचारशील तो बना है परन्तु उसके विचारों में सात्विकता कम ही हुई है । उस की बुद्धि भ्रष्ट होने का ही यह परिणाम है कि आज हर देश में भी लड़ाई-झगड़े, कलह-क्लेश और अशान्ति है और हरेक मनुष्य का अपना मन भी अशान्त है ।

अत: अब प्रश्न उठता है कि — यदि मनुष्य का मन किसी प्रलोभना या उत्तेजना के वश बिगड़ जाय, उसे तो बुद्धि अच्छे विचारों द्वारा कन्ट्रोल में ला सकती है, परन्तु यदि मनुष्य की बुद्धि ही बिगड़ जाये तो उसे कैसे ठीक किया जाये ?

बुद्धि सात्विक कैसे बने ?

बुद्धि को सात्विक बनाने के कार्य के लिये सभी कहते हैं कि मनुष्य सत्संग में जाया करे । सत्संग में अच्छे वचन सुनने से और परमपिता परमात्मा की स्मृति में रहने से मनुष्य की बुद्धि सतोगुणी बनती है । जैसे बर्तनों को राख से साफ किया जाता है, कपड़े को साबुन से धोया जाता है और शरीर को पानी से स्वच्छ किया जाता है, वैसे ही बुद्धि को पवित्र बनाने का साधन ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग ही है । परन्तु यदि कोई व्यक्ति ऐसे स्थान पर ही न जाय, जहां पर कि ईश्वरीय ज्ञान की चर्चा होती है, वास्तविक योग की शिक्षा दी जाती है या सही अर्थ में सत्संग होता है, तो बताइये कि उसे सद्‌बुद्धि कैसे मिलेगी ? सद्‌बुद्धि न मिलने से वह अपने मन पर कन्ट्रोल कैसे कर सकेगा और मन पर कन्ट्रोल न होने से उसका आचरण कैसे ऊंचा हो सकेगा और आचरण ऊंचा नहीं होगा तो वह जीवन में सुख और शान्ति कैसे प्राप्त कर सकेगा ?

हास्य जनक उत्तर

परन्तु आज हम लोगों को कहते हैं कि — आप प्रतिदिन घण्टा-आधा घण्टा समय निकाल कर एक सप्ताह तक हमारे आध्यात्मिक ज्ञान-केन्द्र अथवा संग्रहालय पर पधार कर ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग की शिक्षा प्राप्त कीजिये तो प्राय: लोग टालमटोल करते हैं । उनमें से कई लोग तो बहुत ही ऐसे उत्तर देते हैं जिन्हें सुनकर बहुत हंसी आती है और उन लोगों पर दया भी आती है । नमूने के तौर पर हम दो तीन व्यक्तियों द्वारा दिये गए उत्तर यहां अंकित कर रहे हैं :-

एक माता को कहा गया कि — ईश्वरीय ज्ञान द्वारा जीवन में बहुत ही पवित्रता और शान्ति प्राप्त होती है और सहज राजयोग द्वारा प्रभु से मनोमिलन का आनन्द भी मिलता है, आपको हमारा निमन्त्रण है कि कुछ दिन आकर मानव जीवन के लक्ष्य को तथा जीवन को सुखी बनाने के पुरुषार्थ की रूप-रेखा को समझो । इसके उत्तर में उस धनाढ्य माता ने

कहा — 'हां, मेरा मन तो करता है कि प्रभु-चर्चा सुनूँ, परन्तु क्या करूँ, अभी परसों ही मेरी भैंस ब्याही है, उसकी बछिया की थोड़ी तबियत खराब है, इसलिये अभी तो कुछ दिन मैं नहीं आ सकती ।'

ऐसे ही एक अन्य व्यक्ति को प्रभु-परिचय प्राप्त करने तथा आत्मानुभूति (Self-realisation) करने के लिये, सहज ज्ञान प्राप्त करने हेतु कुछ दिन प्रात: अमृत वेले आने के लिये निमन्त्रण दिया गया तो वे बोले — 'प्रात: काल तो मैं मोती (अपने कुत्ते) को सैर कराने जाया करता हूँ । सारा दिन तो मैं घर से बाहर रहता हूँ और मोती अकेला रहता है । यही एक टाईम है जब वह मेरे साथ रहकर खुशी महसूस करता है । इसलिये अमृत वेले अपना आना मुश्किल है और दिन-भर तो मुझे वैसे ही समय नहीं मिलता ।'

तीसरे एक व्यक्ति को जब आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा जीवन को दिव्य बनाने का सुझाव दिया गया तो वह बोले कि — "मैं रात्री को ग्यारह-बारह बजे समाचार-पत्र पढ़ते-पढ़ते ही सोता हूँ और प्राय: उठते ही चाय का प्याला पीकर जब तक समाचार पत्र न पढ़ लूँ तब तक ऐसा महसूस होता है कि आज मुझसे कुछ ख़ज़ाना छिन गया है । इसके अलावा जितना समय है, उसमें से अधिकांश तो मैं दफ्तर और घर के कोल्हू में जुटा रहता हूँ और ऐसे ही मेरे जीवन का अन्त होगा, इसी में ही मैं खुश भी हूँ ।"

देखिये तो लोग कैसे-कैसे उत्तर देते हैं । सोचने की बात है कि जो व्यक्ति बुद्धि की शुद्धि में अथवा अपनी आध्यात्मिक उन्नति में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं रखते, उनके बारे में क्या किया जाये ? उनकी बुद्धि तो इतनी भ्रष्ट हो चुकी है कि उन्हें अपने हित और अहित का भी ज्ञान नहीं है और वे एक कोल्हू के बैल की तरह ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं । वे ईश्वरीय ज्ञान के महत्व को नहीं जानते और शायद उसे कठिन समझते हैं हालांकि वह है बहुत सरल ।

ईश्वरीय ज्ञान कितना सहज है ?

आज छोटे-छोटे बच्चों की पाठ्य-पुस्तकें इतनी बढ़ गई हैं कि जब वे स्कूल में जाते हैं तो अपने हाथ में लोहे का एक छोटा-सा बक्स अपनी किताबों और कापियों इत्यादि से भरकर ले जाते हैं, या तो कोई बुलावी ही उनके साथ उनकी पुस्तकों का बक्स लेकर जाती है । यदि गांव का कोई व्यक्ति उन बच्चों को बक्स ले जाते हुए देख ले, तो वह बेचारा समझेगा कि यह लड़का किसी दूसरे गांव में जा रहा है, शायद यह अपनी नानी के यहां कुछ दिन बिताने के लिए चल पड़ा है । परन्तु वास्तव में वह जा रहा होता है अपने स्कूल । अब देखिये कि इतनी पुस्तकें तो बच्चे पढ़ते हैं, परन्तु यदि उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने के लिए कहा जाय तो उनके माता-पिता कहते हैं कि — अभी तो ये छोटे बच्चे हैं, ईश्वरीय ज्ञान समझ ही नहीं सकेंगे । परन्तु आप सोचिये कि स्वयं के बारे में यह जानना कि — मैं एक आत्मा हूं, और परमपिता परमात्मा की सन्तान हूं, क्या यह कोई बड़ी बात है ? जब कि बच्चा अपनी देह के माता-पिता के नाम-धाम आदि के बारे में जानता है और इतने सारे अध्ययन-विषय पढ़ता है, तो क्या वह आत्मा के पिता परमात्मा का नाम-धाम आदि नहीं समझ सकता ? अपने-आप तथा अपने बाप (परमात्मा) को जानने में क्या कठिनाई है ?

इसी प्रकार, यदि माताओं से ईश्वरीय ज्ञान लेने को कहा जाय तो वे कहती हैं कि हम तो अनपढ़ हैं अथवा हम तो अब बूढ़ी हो गई हैं, हम भला ईश्वरीय ज्ञान कैसे ले सकेंगी ? परन्तु आपने ध्यान दिया होगा कि माताएं रिश्ते-नातों को खूब याद रखती हैं । आपने कभी उन्हें यह कहते हुए भी सुना होगा कि — 'मेरी देवरानी की चाची की सास की भतीजी के लड़के की शादी है ।' इस प्रकार के पेचीदे रिश्ते तो उन्हें याद रहते हैं — तब क्या वे इतनी बात नहीं समझ सकतीं और इतना सीधा-सा नाता याद नहीं रख सकतीं कि परमात्मा हमारा परमपिता, परमशिक्षक और

परम सद्गुरु है जो कि हमें सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार देता है ।

बुजुर्ग लोगों को आप ईश्वरीय ज्ञान लेने के लिये कहिये तो वे कहते हैं — हम अब क्या ज्ञान सीखेंगे, क्या बूढ़े तोते भी कभी पढ़ते हैं ? हमने तो जो सीखना था, सीख लिया । अब हमारे सीखने का जमाना तो बीत गया । परन्तु आपने देखा होगा कि वह बुढ्ढे जब अपने पोतों तथा पोतियों के बीच बैठते हैं तो खूब खुशी से सुनाते हैं कि — 'जब हमारे दादा यहां के चौधरी थे तब गांव में खेती खूब हुआ करती थी । तब एक बार क्या हुआ ... कि....फिर ऐसा हुआ कि ... ।' इस तरह वे लम्बी-चौड़ी आप-बीती, आंखों-देखी या सुनी-सुनाई बातें करने पर भी नहीं थकते । तो क्या इतना मात्र जानना कि — सतयुग के आरम्भ में इस सृष्टि पर श्री लक्ष्मी और श्री नारायण का दैवी स्वराज्य था, तब वहां सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति थी, फिर बाद में त्रेता में श्री सीता और श्री राम का राज्य था, द्वापर युग के आरम्भ से भारत पतित होना शुरू हुआ .... इस प्रकार आत्माओं के जन्मों की दिलचस्प कहानी वे नहीं समझ सकते ?

निःसन्देह, बच्चे-बूढ़े, नर-नारी सभी सहज ईश्वरीय ज्ञान सीख सकते हैं और अपनी बुद्धि को पवित्र एवं दिव्य बनाकर अपने जीवन को महान् बना सकते हैं और समाज में एक दिव्य क्रान्ति ला सकते हैं, परन्तु आज उनकी बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो गई है कि वे इस पुरुषार्थ के महत्व को समझते ही नहीं और, दूसरे, वे बिल्कुल सुस्त तथा आराम पसन्द बन गये हैं ।

पल में प्रलय होयगी, फिर करोगे कब ?

फिर, आज की दुनिया में लोगों की यह मनोवृत्ति बन गई है कि वे शुभ कार्यों को स्थगित (Postpone) कर दिया करते हैं । कोई कहता है कि मैं अभी तीन चार वर्षों के बाद जब रिटायर्ड हो जाऊंगा तब ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति के लिए समय दूंगा । दूसरा कहता है कि शिवरात्रि आने

वाली है, तब से लेकर मैं पवित्र बनूंगा। अन्य कोई कहता है कि मेरा व्यापार ही ऐसा है कि मुझे हिसाब-किताब के कार्य से ही समय नहीं मिलता। मैं अभी एक-दो वर्षों में सारा सिलसिला ठीक करके फिर ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति के लिए समय निकालूंगा। परन्तु वे यह नहीं सोचते कि मनुष्य की किसी भी समय मृत्यु हो सकती है। मौत का तो कोई भी, कभी भी बहाना बन सकता है। मृत्यु न तो यह देखती है कि मनुष्य रिटायर्ड हुआ है या नहीं, शिवरात्री आई है या नहीं और सेठ जी ने हिसाब-किताब कर लिया है या नहीं, बल्कि वह तो मनुष्य को जैसे-तैसे काबू कर लेती है। अत: मनुष्य को परमपिता परमात्मा का परिचय प्राप्त करने, बुद्धि को सात्विक एवं पवित्र बनाने तथा आत्मानुभूति करने का कार्य को कल पर नहीं छोड़ना चाहिये। इसी के लिए तो कहा गया है कि — 'कल करना सो आज कर, आज करना है सो अब, पल में परलय होयगी फिर करोगे कब ?'

भक्ति मार्ग के लोगों में एक आख्यान प्रसिद्ध है। कहते हैं कि एक मनुष्य मरने के बाद भगवान् के पास गया तो भगवान् ने उसे उलाहना दिया कि 'हे भक्त, मैंने तुम्हें तीन तार भेजे परन्तु तुमने उन पर ध्यान नहीं दिया और एक का भी उत्तर नहीं दिया।' भक्त ने कहा — 'भगवन, मेरे पास तो कोई तार नहीं आया।' भगवान् ने कहा पहली तार तो यह भेजी कि तुम्हारे बाल सफेद हो गये परन्तु तुमने यह नहीं समझा कि भगवान् का बुलावा आने वाला है। फिर, तुम्हारे दांत हिलने लगे, यह दूसरी तार थी। फिर तुम्हें सुनाई कम देने लगा और आंखों की ज्योति भी मन्द हो गयी परन्तु फिर भी आपने ध्यान नहीं दिया। आखिर मैंने बुला ही लिया। आज तो मनुष्य बूढ़ापा आने से भी पहले मर जाता है। आया परवाना और हुआ रवाना — कोई भी पहले से नहीं जानता। तो कहने का भाव यह है कि यदि कोई बूढ़ा भी होकर मरे तो भी ईश्वरीय स्मृति पर तो पहले ही ध्यान देना पड़ेगा।

कहावत भी है कि ग्राहक और मौत का कोई वक्त नहीं है । एक मनुष्य कमरे के भीतर कमरे, फिर उस कमरे के भीतर वाले कमरे, इस प्रकार सातवीं कोठरी में बैठा हो और वहां भी उसकी रक्षा के लिये पहरेदार खड़े हों तो वहां भी मृत्यु पहुंच कर अचानक ही उसको अपने वश में कर सकती है । अत: मनुष्य को धन-दार, मित्र-सखा, यौवन और महल-माड़ी का अभिमान न करके प्रभु की स्मृति के सर्वोत्तम कार्य को कल पर नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि कोई पता नहीं कि कल तक हम रहेंगे भी या नहीं या अगर रहेंगे भी तो आज हमारे पास जो साधन हैं, वे कल भी हमारे पास होंगे या नहीं । कल पर शुभ कार्य को स्थगित करना गोया आया हुआ भाग्य लौटा देना है ।

कहाँ से आया ..... ?

कहां से आया, कहां को जाना, पता भी है इन्सान तुझे ?
किस मार्ग का तू मुसाफिर है, कुछ इसका भी है ज्ञान तुझे ?
क्या कार्य करने आया था, किस ड्रामा का तू एक्टर है ?
क्या पार्ट बजाना है तू ने, क्या दाता का फरमान तुझे ?
क्यों माया के चक्कर में फँसा, उलझा है पांच विकारों में ?
क्यों आसुरी मत को अपनाया, शिव-मत का भूला ज्ञान तुझे ?
ऑखो पर पट्टी बाँध रखी, ठोकर पर ठोकर खाता है ?
क्यों पतित हुआ तू फिरता है, नहीं पावनता का ध्यान तुझे ?
वह ज्ञान के हीरे देता है, पर झोली है तेरी छलनी सी ?
तू निर्धन खुद ही होता है, वह करता है धनवान तुझे ?
तकदीर वह तेरी चमकाता, तू रोता अपनी किस्मत को ?
उठ देख ज़रा वह विनाश खड़ा, और पापों का बोझ चढ़ा ?
अब ग़फलत मत कर योग लगा, है जीवन का भी ज्ञान तुझे ?

मुद्रण : ओम् शान्ति प्रैस, ज्ञानामृत भवन, आबू रोड़

विचार कीजिये

एक बात और विचारणीय है। प्रायः हम लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं कि – "मेरे भाग्य ही ऐसे हैं, मेरी तकदीर ही ऐसी है।" यह भाग्य अथवा तकदीर क्या है ? यह कर्म-फल अथवा दण्ड-भोग या पुण्य-फल ही तो है। तो यदि मनुष्य के कर्मों का फल उसे मनुष्य-योनि में मिलता ही न हो तो तब फिर मनुष्य-योनि में भाग्य, प्रारब्ध, कर्म-भोग आदि का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। परन्तु वास्तविकता, अनुभव और उक्ति ये कहते हैं कि जैसे मनुष्यों द्वारा निर्मित शासक (राजा या न्यायालय) मनुष्य-योनि में ही उसे बुरे कर्मों के लिये दण्ड देते हैं, वैसे ही शाश्वत विधान ही यह है कि मनुष्यात्मा को मनुष्य-योनि में ही कर्म-फल मिलता है।

अतः मनुष्य-योनि केवल कर्म-योनि ही नहीं है बल्कि भोग-योनि भी है। वरना मनुष्य सभी सुखी होते और पशु-पक्षी इत्यादि सभी दुःखी होते। अगर मनुष्यात्मायें बुरे कर्मों के फल-स्वरूप पशु इत्यादि योनियों में भ्रमण करतीं तो आज मनुष्य-गणना बढ़ती न जाती बल्कि बहुत ही कम हो जाती क्योंकि इस कलि काल में तो प्रायः सभी मनुष्यात्मायें अधिकतर पाप-कर्म ही कर रही हैं।